नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 129 • वर्ष 11 अंक 4
मई 2009 • तीन रुपये • 12 पृष्ठ

मई दिवस अनुष्ठान नहीं, संकल्पों को फ़ौलादी बनाने का दिन है!

एक बार फिर मुक्ति का परचम उठाओ! पूँजी की बर्बर सत्ता के ख़िलाफ़ फ़ैसलाकुन लड़ाई की तैयारी में जुट जाओ!!

इक्कीसवीं सदी को मज़दूर क्रान्ति की मुकम्मल जीत की सदी बनाओ!!!

मई 1886 के ऐतिहासिक संघर्ष के लगभग सवा सौ साल बाद आज मज़दूर वर्ग एक अभूतपूर्व परिस्थिति में खड़ा है। एक ओर दशकों के संघर्षों और अनगिनत मज़दूर योद्धाओं की क़ुर्बानी से हासिल उसके ज़्यादातर राजनीतिक अधिकार छीन लिये गये हैं और व्यापक मज़दूर आबादी पूँजी की बर्बर निरंकुश सत्ता के क्रूर शोषण के आगे मानों निहत्थी छोड़ दी गयी है। मज़दूर आन्दोलन के बिखराव ने पूँजीपतियों को यह खुली छूट दे दी है कि वे मनमानी शर्तों पर मज़दूरों को लूट-खसोट सकते हैं। अपने अस्तित्व के लिए जूझते मज़दूरों की भारी आबादी से तो मज़दूरों का अपना राज क़ायम करने का सपना ही छीन लिया गया है।

दूसरी ओर, आज पूँजीवाद 1930 के बाद की सबसे घातक मन्दी की मार से चरमरा रहा है। अमेरिका से शुरू हुई मन्दी अब न केवल विश्वव्यापी होकर 1930 के दशक की महामन्दी और महाध्वंस के बाद के सबसे बड़े आर्थिक संकट का रूप ले चुकी है, बल्कि अर्थव्यवस्था के कारगर पुनर्गठन का कोई विकल्प भी सामने मौजूद नहीं दीख रहा है। जो लोग पूँजीवाद के अमरत्व के दावे करते हुए समाजवाद को भंगुर और अव्यावहारिक बता रहे थे, वे पूँजीवाद को दुश्चक्र से निकलने की कोई राह नहीं सुझा पा रहे हैं। एक बार फिर यह सिद्ध हो गया है कि साम्राज्यवाद के आगे पूँजीवाद की कोई और अवस्था नहीं है और ऐतिहासिक कारणों से साम्राज्यवाद की आयु भले ही कुछ लम्बी हो गयी हो, लेकिन अब एक सामाजिक-आर्थिक संरचना और विश्व-व्यवस्था के रूप में पूँजीवाद के दीर्घजीवी होने की सम्भावना निश्शेष हो चुकी है।

वर्तमान परिस्थिति एक बार फिर बड़ी शिद्दत के साथ मज़दूर आन्दोलन को तमाम भ्रामक और फ़रेबी विचारों के घेरे से बाहर निकालकर सच्ची क्रान्तिकारी राह पर आगे बढ़ाने की फ़ौरी ज़रूरत का अहसास करा रही है। ऐसे में हम बिगुल के मई, 2003 के अंक का सम्पादकीय अग्रलेख एक बार फिर यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं क्योंकि इसमें प्रस्तुत विचार आज भी उतने ही, बल्कि पहले से ज़्यादा प्रासंगिक और विचारोत्तेजक हैं। – सम्पादक मण्डल

●

मज़दूर वर्ग के लिए सबसे बुरी बातों में से एक शायद यह है कि मई दिवस को आज एक अनुष्ठान बना दिया गया है। यह मई दिवस के महान शहीदों का अपमान है। मई दिवस मज़दूरों के मक्कार, फ़रेबी, नक़ली नेताओं के लिए महज़ झण्डा फहराने, जुलूस निकालने, भाषण देने की एक रस्म हो सकता है, लेकिन वास्तव में यह उन शहीदों की क़ुर्बानियों की याददिहानी का एक मौक़ा है, जिन्होंने अपनी ज़िन्दगी देकर पूरी दुनिया के मज़दूरों को यह सन्देश दिया था कि उन्हें अलग-अलग पेशों और कारख़ानों में बँटे-बिखरे रहकर महज़ अपनी पगार बढ़ाने के लिए लड़ने के बजाय एक वर्ग के रूप में एकजुट होकर अपने राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष करना होगा। काम के घण्टे कम करने की माँग उस समय की सर्वोपरि राजनीतिक माँग थी।

मई दिवस के शहीदों की क़ुर्बानी बेकार नहीं गयी। जल्दी ही काम के घण्टों पर संघर्ष की लहर अमेरिका से यूरोप तक और फिर पूरी दुनिया में फैल गयी। पूँजीपति वर्ग की सरकारें विकसित पूँजीवादी देशों से लेकर उपनिवेशों तक में आठ घण्टे के कार्यदिवस का क़ानून बनाने के लिए बाध्य हो गयीं। यही नहीं, मज़दूरों की जुझारू वर्ग चेतना से आतंकित दुनिया के अधिकांश देशों की पूँजीवादी सत्ताएँ श्रम क़ानून बनाकर किसी न किसी हद तक मज़दूरों को चिकित्सा, आवास आदि बुनियादी सुविधाएँ, तथा यूनियन बनाने का अधिकार देने, न्यूनतम मज़दूरी तय करने और जब मर्ज़ी रोज़गार छीन लेने जैसी मालिकों की निरंकुश हरकतों पर बन्दिशें लगाने के लिए मजबूर हो गयीं। इसीलिए यह कहा जाता है कि मई दिवस दुनिया के मेहनतकशों के राजनीतिक चेतना के युग में प्रवेश करने का प्रतीक दिवस है। मई, 1886 ने यह संकेत दे दिया था कि बीसवीं सदी में श्रम की ताक़त संगठित होकर पूँजी की सत्ता को झकझोर देने वाले विकट, भूकम्पकारी तूफ़ानों को जन्म देने वाली है।

यदि इस बुनियादी बात को ही भुला दिया जाये तो फिर मई दिवस मनाने का भला क्या मतलब रह जाता है? लेकिन सच तो यही है कि आज इस बुनियादी बात को ही भुला दिया गया

(पेज 6 पर जारी)

चुनावी नौटंकी का पटाक्षेप : अब सत्ता की कुत्ताघसीटी शुरू

जनता को सिर्फ़ यह तय करना है कि वह इसे कितना और बर्दाश्त करेगी!

बिगुल डेस्क

करीब डेढ़ महीने तक चली देशव्यापी चुनावी नौटंकी अब आख़िरी दौर में है। 'बिगुल' का यह अंक जब तक अधिकांश पाठकों के हाथों में पहुँचेगा तब तक चुनाव परिणाम घोषित हो चुके होंगे और दिल्ली की गद्दी तक पहुँचने के लिए पार्टियों के बीच जोड़-तोड़, सांसदों की खरीद-फ़रोख्त और हर तरह के सिद्धान्तों को ताक पर रखकर निकृष्टतम कोटि की सौदेबाज़ी शुरू हो चुकी होगी। पूँजीवादी राजनीति की पतनशीलता के जो दृश्य हम चुनावों के दौरान देख चुके हैं, उन्हें भी पीछे छोड़ते हुए तीन-तिकड़म, पाखण्ड, झूठ-फ़रेब का घिनौना नज़ारा पेश किया जा रहा होगा। जिस तरह इस चुनाव के दौरान न तो कोई मुद्दा था, न नीति - उसी तरह सरकार बनाने के सवाल पर भी किसी भी पार्टी का न तो कोई उसूल है, न नैतिकता! सिर्फ़ और सिर्फ़ सत्ता हासिल करने की कुत्ता घसीटी जारी है।

कोई भी पार्टी किसी भी पार्टी से हाथ मिलाने, गले मिलने को तैयार है। चुनाव की शुरुआत में यूपीए से छिटककर अलग गये लालू प्रसाद और रामविलास पासवान की हालत कमज़ोर लगी तो काँग्रेस ने 15 साल से भाजपा गठबन्धन में मौजूद नीतीश कुमार पर डोरे डालने शुरू कर दिये। करुणानिधि के द्रमुक की हालत गड़बड़ लगी तो जयललिता के अन्नाद्रमुक से नैन-मटक्का करने की कोशिश शुरू दी। उधर एनडीए ने खुलेआम ऐलान कर दिया कि जो कोई भी आडवाणी को प्रधानमन्त्री बनाने के लिए राज़ी होगा उसका गठबन्धन में स्वागत है। वैसे पार्टियों की बन्दरकुद्दी तो चुनाव के दौरान ही शुरू हो गयी थी। तीसरे मोर्चे में शामिल टीआरएस आख़िरी दौर के मतदान के पहले ही करात ऐण्ड कम्पनी को ठेंगा दिखाकर एनडीए में चली गयी थी। ज़ाहिर है, किसी भी पार्टी को एक-दूसरे की नीतियों से कुछ लेना-देना नहीं है। सब जानते हैं, जनता को लूटने और देश को बेचने वाली नीतियों पर सबके बीच आम सहमति है। भाषणों में चाहे कोई कुछ भी कहे, अन्दरखाने सब एक हैं।

तीसरे मोर्चे के रूप में वामपंथियों द्वारा जुटाया गया भानमती का कुनबा चुनाव के दौरान ही बिखरने लगा था। वामपंथियों के राजनीतिक अवसरवाद की इससे बड़ी मिसाल भला और क्या हो सकती थी कि वे महाभ्रष्ट और सत्ता की भूखी

(पेज 7 पर जारी)

भीतर के पन्नों पर

मेट्रो मज़दूरों का संघर्ष जारी – पेज 3
बोलते आँकड़े चीखती सच्चाइयाँ – पेज 3
मई दिवस की रिपोर्ट – पेज 4
प्रवासी मज़दूर : चिकित्सा सेवाओं के शरणार्थी – पेज 5
कार्ल मार्क्स के जन्मदिवस पर एंगेल्स का लेख – पेज 8
चीनी विशेषता वाले "समाजवाद" में मज़दूरों के स्वास्थ्य की दुर्गति – पेज 9
नताशा – एक महिला बोल्शेविक संगठनकर्ता – पेज 10
मई 1886 का वह रक्तरंजित दिन जब मज़दूरों के बहते ख़ून से जन्मा लाल झण्डा – पेज 11

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

जीवन में बदलाव लाने के लिए ज़रूरी है कि संघर्ष करना सीखो

मित्रवत साथियो,

क्या आप जानते हैं कि शोषण करने वाला शोषण सहने वाले से ज़्यादा गुनहगार होता है। और सभी जानते हैं, शोषण सहने वाला अधिक परिश्रमी होता है और शोषण करने वाला ऐयाशबाज़ होता है और हवेली में आरामदेह जीवन बिताता है।

लेकिन ऐसा क्यों?

ऐसा सवाल एक नहीं है बल्कि बहुत अधिक संख्या में हैं। लेकिन इन सवालों का जवाब एक ही है और वह है 'अज्ञानता'। जो दिमाग़ और आँख होते हुए भी उन पर पट्टी बँधी हुई है। जो आज के हालात में 'जानवर और मनुष्य एक समान जीने को मज़बूर है', ऐसा क्यों? आप ख़ुद समझिये और विचार कीजिये। आपके घर बैल होगा, अगर नहीं भी होगा तो सुने तो ज़रूर होंगे, बेचारा कितना मासूम पश्रिमी होता है। पूरे साल का अनाज पैदा करने में सहायता करता है। क्या उसका अधिकार नहीं है कि सोने के लिए पलंग मिले, उसका मालिक हमाम साबुन से नहाये तो उसे भी नहाने का हक़ हो, उसे भी अच्छे कपड़े मिलें, उसे भी खाने को अच्छा भोजन मिले, आपकी सम्पति में भी आधा हक़ हो।

लेकिन हम लोग क्यों नहीं देते? हम लोग जानते हैं कि बैलों में न तो एकता बनेगी, न ही हमारे ख़िलाफ़ बोल सकते हैं, न ही हड़ताल कर सकते हैं और तो और उसे हम मार-पीट भी सकते हैं। खाना देना बन्द कर सकते हैं।

तो क्या आप भी बैल हैं? नहीं? तो ऐसा क्यों कि आपके एक दिन की मज़दूरी यही होती है कि आप शाम को खाओ तो सुबह के लिए नयी कमाई का इन्तज़ार और इन्तज़ाम करना पड़ता है। आप अपने पेट और सिर्फ़ पेट के लिए काम नहीं करते हैं। आपके बीवी-बच्चे होंगे। अगर नहीं हैं तो आने वाले दिनों में तो होंगे ही। एक दिन की मज़दूरी उसे कहते हैं जो बीवी-बच्चों या परिवार के लिए दो वक़्त की रोटी मुहैया करायें थोड़ा खुले असमान के नीचे साँस ले सकें। परिवार के साथ कुछ पल बिता सकें, लेकिन इस पूँजीवादी युग में ऐसा कहाँ सम्भव है। इसी कारण, दोस्तो, अपनी दुर्दशा दूसरों को सुनाते हुए ऐसा लगता है कि हम लोग उस बैल की भाँति ही जीवन बिता रहे हैं।

लेकिन दोस्तो, उस बैल को लोग इतना चारा तो डालते हैं कि उसे खाकर वह मस्त हो जाये और काम पर लग सके। लेकिन दोस्तो, आपको इस बदलते युग (पूँजीवादी) में कोई पूछने भी नहीं आयेगा। आप सब क्यों जानते हुए भी जानवरों की तरह जीना चाहते हैं? यह भी कोई ज़िन्दगी है? आज अपनी मजबूरी दूर करने के लिए 8 घण्टे काम करो, 12 घण्टे खटो, 16 घण्टे लगाओ या साथी तुम पूरा वक़्त लगाओ, चाहे मालिकों के पीछे पूरी ज़िन्दगी लगाओ, तुम मर जाओगे लेकिन तुम्हें कुछ भी नहीं मिलेगा और तुम ज़िन्दगी में कभी सुख का अनुभव नहीं कर पाओगे। कुछ गिने-चुने लोग कम्पनी में यह कहते हुए भी सुने होंगे – "हमारी कम्पनी में आठ घण्टे काम चलता है। तो क्या पैसा बनेगा? ओवर टाइम तो लगता नहीं तो क्या बचेगा?" "हम तो उस कम्पनी में टाइम ज़्यादा लगाते थे तो पैसा अच्छा बचता था और सुख से रहते थे"। लेकिन साथियो, यह सुख वाली बात नहीं है बल्कि उसी से तुम दुखी हो। 8 घण्टे में पैसा पूरा नहीं मिला। अब मनोरंजन के समय को काम में लगाकर ओवर टाइम करते हो और परिवार का ख़र्च चलाते हो। यह सुख की बात है? यह बिल्कुल मूर्खता है। अगर आप ऐसा सोचोगे तो आपके बच्चे भी गुलामी की ज़ंजीरों में जकड़े जायेंगे – जैसेकि कुछ जगहों पर बँधुआ मज़दूर दिखते हैं।

अत: साथियो, समय रहते विकल्प को अपनाना होगा – गुलामी करते हुए, नर्क जैसा जीवन जीते हुए दिन बिताओ या फिर इस पूँजीवादी, जनफ़रोश, भ्रष्ट शासन व्यवस्था को ख़त्म करने का प्रण करो।

अत: साथियो जीवन में बदलाव लाने के लिए ज़रूरी है कि संघर्ष करना सीखो और वास्तविक मज़दूर नेता या आपका ही कोई साथी जो पहले मालिको के शोषण का शिकार हुआ है, आपके सामने आये और संघर्ष के लिए प्रेरित करे तो फ़ौरन आपका उसके प्रति फ़र्ज़ बनता है कि क़दम से क़दम मिलाकर चलने का वादा करें। दूसरी बात यह है कि इस पूँजीवादी युग में ऐसा कोई अख़बार नहीं है जो मज़दूरों की पूरी ख़बर का 25 प्रतिशत भी छापता हो। है तो बस एक ही। वह है बिगुल अख़बार। जो आपकी समस्या का 100 प्रतिशत बताता है।

– नरेन्द्र कुमार
बिगुल का सदस्य
बजाज सन्स लिमिटेड, सी-103,
फ़ेज-5, फोकल प्वाइण्ट, लुधियाना

मई दिवस

यह क़िस्सा नहीं किताबों का यह खेल नहीं दस्तूरों का,
एक मई इतिहास बना है दुनिया के मज़दूरों का।

एक मई 1886 इतिहास का सुनहरा काल हुआ,
निर्दोष ग़रीबों के ख़ून से जब शहर शिकागो लाल हुआ,
जब गूँजा नारा अधिकारों का जब फटे कान सरकारों के
मौत से लड़ते जोश के आगे अमरीका बेहाल हुआ।

सारी दुनिया दहल गयी जब तूफ़ान उठा मज़दूरों का,
एक मई इतिहास बना है दुनिया के मज़दूरों का।

देश पर शासन करने वाले जालिम शासक नीरो हैं,
इन्साफ़परस्ती की दुनिया में एक से सौ तक जीरो हैं,
इन्साफ़ की सच्ची झलक मिली थी पेरिस के कम्यूनों से,
पार्सन, स्पाइस, एंजेल फ़िशर मज़दूरों के सच्चे हीरो हैं।

फाँसी चढ़कर मौत से लड़कर इतिहास लिखा मज़दूरों का,
एक मई इतिहास बना है दुनिया के मज़दूरों का।

सूर्य उदय से सूर्य अस्त तक काम सभी को करना था,
आठ साल के बच्चों को भी पेट की ख़ातिर मरना था,
बूढ़े-बच्चे, नर और नारी सबकी यही हक़ीक़त थी,
शीश झुकाकर जीने से अच्छा मौत से लड़कर मरना था।

आठ घण्टे का कार्य दिवस हो नारा बना मज़दूरों का,
एक मई इतिहास बना है दुनिया के मज़दूरों का।

माँ के सीने से चिपका बालक अपना फ़र्ज़ निभाया था,
चन्द माह की छोटी उम्र में अमर शहादत पाया था,
ख़ून से भीगे लाल को माँ ने झण्डे में लिपटाया था,
क़ुर्बानी की याद का झण्डा दुगना जोश बढ़ाया था।

मासूम शहीद के ख़ून में रँगकर झण्डा मज़दूरों का लाल हुआ,
एक मई इतिहास बना है दुनिया के मज़दूरों का।

– टी. एम. अंसारी
शक्ति नगर, लुधियाना

मेट्रो प्रशासन ने भिजवाया
कर्मचारियों को जेल
पर अगले ही दिन मिल गयी उनको बेल
मिली बेल कर्मचारी आन्दोलन ने
पकड़ा ज़ोर
अब तो मच गया हर तरफ हल्ला,
मेट्रो प्रशासन चोर
करे मज़दूरों का शोषण
मज़दूरों के शोषण से करे
अफ़सरों का पोषण

– दिल्ली मेट्रो का एक मज़दूर

राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

क्रान्तिकारियों के दस्तावेज़

भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज़ – स. सत्यम 190.00

दायित्वबोध पुस्तिका शृंखला

भारतीय कृषि में पूँजीवाद का विकास – सुखविन्दर 30.00

आह्वान पुस्तिका शृंखला

आरक्षण : पक्ष-विपक्ष और तीसरा पक्ष 10.00
आतंकवाद के बारे में विभ्रम और यथार्थ 10.00
क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन 15.00

बिगुल पुस्तिका शृंखला

जंगलनामा : एक राजनीतिक समीक्षा – डॉ. दर्शन खेड़ी 5.00
लाभकारी मूल्य, लागत मूल्य, मध्यम किसान और छोटे पैमाने के माल उत्पादन के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण : एक बहस 30.00
संशोधनवाद के बारे में 5.00
शिकागो के शहीद मज़दूर नेताओं की कहानी – हावर्ड फास्ट 10.00
मज़दूर नायक, क्रान्तिकारी योद्धा 10.00

मार्क्सवाद

कम्युनिस्ट घोषणापत्र (व्याख्यात्मक टिप्पणियों के साथ) – डी. रियाजानोव 100.00
मार्क्सवाद की मूल समस्याएँ – जी. प्लेखानोव 30.00
अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन – अल्बर्ट रीस विलियम्स 90.00

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

अब इण्टरनेट पर भी उपलब्ध है। इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक और राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। हमारा प्रयास होगा कि बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक जल्दी ही वेबसाइट पर उपलब्ध करा दिये जाये।

वेबसाइट का पता :
http://sites.google.com/site/bigulakhbar/

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़्फ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	:	69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
सम्पादकीय उपकार्यालय	:	जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ
दिल्ली सम्पर्क	:	बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर दिल्ली-94 फोन : 011-65976788
ईमेल	:	bigul@rediffmail.com

मूल्य : एक प्रति–रु. 3/- वार्षिक–रु. 40.00 (डाक ख़र्च सहित)

बिगुल

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध :

1. **डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**
2. **जनचेतना स्टाल, काफी हाउस बिल्डिंग, हज़रतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे तक)**
3. **जाफरा बाज़ार, गोरखपुर-273001**
4. **जनचेतना सचल स्टाल (ठेला) चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8)**

दमन-उत्पीड़न से नहीं कुचला जा सकता मेट्रो कर्मचारियों का आन्दोलन

बिगुल संवाददाता

दिल्ली मेट्रो की ट्रेनें, मॉल और दफ़्तर जितने आलीशान हैं उसके कर्मचारियों की स्थिति उतनी ही बुरी है और मेट्रो प्रशासन का रवैया उतना ही तानाशाहीभरा। लेकिन दिल्ली मेट्रो रेल प्रशासन द्वारा कर्मचारियों के दमन-उत्पीड़न की हर कार्रवाई के साथ ही मेट्रो कर्मचारियों का आन्दोलन और ज़ोर पकड़ रहा है। सफ़ाईकर्मियों से शुरू हुए इस आन्दोलन में अब मेट्रो फीडर सेवा के ड्राइवर-कण्डक्टर भी शामिल हो गये हैं। मेट्रो प्रशासन के तानाशाही रवैये और डीएमआरसी-ठेका कम्पनी गँठजोड़ ने अपनी हरकतों से ठेके पर काम करने वाले कर्मचारियों की एकजुटता को और मज़बूत कर दिया है।

मेट्रो प्रशासन-ठेका कम्पनी गँठजोड़ द्वारा शोषित-उत्पीड़ित मेट्रो के सफ़ाईकर्मियों ने 'मेट्रो कामगार संघर्ष समिति' का गठन किया था और उसके नेतृत्व में लम्बे समय से न्यूनतम मज़दूरी व अन्य बुनियादी माँगों को लेकर वे संघर्षरत थे जिसकी रिपोर्ट **'बिगुल'** के अंकों में दी जाती रही है। पिछले दिनों मेट्रो फीडर बस के चालक और परिचालक भी इस आन्दोलन में शामिल हो गये। 28 अप्रैल को मेट्रो कामगार संघर्ष समिति की अगुवाई में 59 चालकों व परिचालकों ने डी.एम.आर.सी. के प्रबन्ध निदेशक ई. श्रीधरन के नाम अपने हस्ताक्षरों से युक्त ज्ञापन दिया एवं इसकी प्रतिलिपि दिल्ली की मुख्यमन्त्री, केन्द्रीय श्रम मन्त्री व अन्य अधिकारियों को भेजी। राजस्थान बाम्बे ट्रांसपोर्ट (आर.बी.टी. नाम की प्राइवेट ठेका कम्पनी के तहत चलने वाली ये फीडर बसें डी.एम.आर.सी. से अनुबन्ध के तहत मेट्रो स्टेशन तक यात्रियों को लाती-ले जाती है। आर.बी.टी. कम्पनी की इन बसों में क़रीब 500 चालक व परिचालक कार्यरत हैं। लम्बी ड्यूटी के बावजूद इन्हें न तो न्यूनतम मज़दूरी दी जाती है, न ही ई.एस.आई. व पी.एफ. की सुविधा है। ऊपर से कम्पनी कई वाहियात नियमों से इनका शोषण कर रही है। जैसे किसी यात्री के बिना टिकट पाये जाने पर परिचालक को 10,000 रुपये का दण्ड और नौकरी से निकाले जाने का सामना करना पड़ सकता है। प्रत्येक चालक व परिचालक से क्रमशः 10,000 और 30,000 रुपये सिक्योरिटी जमा करायी जाती है जो नौकरी छोड़ने पर समय से नहीं दी जाती है। बस में तकनीकी ख़राबी का खर्चा भी इन कर्मियों के वेतन से काट लिया जाता है। इस ज्ञापन में मुख्य मांगे थीं – **ठेका क़ानून के तहत न्यूनतम मज़दूरी लागू की जाये, ई.एस.आई., पी.एफ़. की सुविधा दी जाये, आर्थिक दण्ड वाले नियम बदले जाये, सभी कर्मियों को स्थायी किया जाये और निकाले गये कर्मियों को नौकरी पर बहाल किया जाये।**

'मेट्रो कामगार संघर्ष समिति' के नेतृत्व में मेट्रो भवन पर प्रदर्शन कर रहे मेट्रो के सफ़ाईकर्मी और मेट्रो फीडर बससेवा के चालक और परिचालक

इस ज्ञापन के बाद भी जब मेट्रो प्रशासन ने कोई ध्यान नहीं दिया तो 5 मई को सफ़ाई कर्मचारियों के साथ फ़ीडर सेवा के कर्मचारियों ने मेट्रो भवन के सामने प्रदर्शन का फ़ैसला किया, जिसकी सूचना मेट्रो प्रशासन को पहले ही दे दी गयी थी। लेकिन 5 मई को कर्मचारियों के वहाँ पहुँचने के कुछ ही देर बाद मेट्रो प्रशासन के इशारे पर दिल्ली पुलिस ने मेट्रो कामगार संघर्ष समिति और उनका समर्थन कर रहे नौजवान भारत सभा और बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ताओं तथा मेट्रो कर्मचारियों सहित 46 लोगों को गिरफ्तार कर लिया और ग़ैर-ज़मानती धारा लगाकर तिहाड़ जेल भेज दिया।

(पेज 5 पर जारी)

बच्चों के खून-पसीने से बन रही है बेंगलोर मेट्रो

बिगुल संवाददाता

कॉरपोरेट जगत में हमेशा ही मजदूरों का मनमाना शोषण होता रहा है लेकिन अब सरकारी उपक्रम भी बेहयाई से श्रम क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ा रहे हैं। वैसे तो मेट्रो रेल कारपोरेशन में श्रम क़ानूनों के खुले उल्लंघन की ख़बरें कर्मचारियों के आन्दोलन की बदौलत सामने आने लगी हैं लेकिन बेंगलोर मेट्रो तो इसमें भी दो क़दम आगे निकल गयी है। वहाँ बच्चों से मज़दूरी करायी जा रही है ताकि कम पैसे पर उन्हें अधिक से अधिक निचोड़ा जा सके। केन्द्र और राज्य सरकार के निवेश और जापान बैंक के सहयोग से मिलने वाले 9,000 करोड़ के बजट के बाद भी बेंगलोर मेट्रो के निर्माण के लिए बच्चों का खून और पसीना बहाया जा रहा है।

पिछले अप्रैल माह के अन्त में श्रम आयोग और बाल कल्याण समिति में रिपोर्ट दर्ज कराये जाने के बाद चाइल्ड हेल्पलाइन हरकत में आयी और एक 13 वर्षीय बाल मज़दूर को वहाँ से छुड़ाया गया। मेट्रो के जिस निर्माण स्थल से उस बच्चे को छुड़ाया गया, वहाँ कुछ और बच्चे काम कर रहे थे लेकिन नागार्जुन कन्स्ट्रक्शन कंपनी के इंजीनियरों के इशारे पर उन्हें वहाँ से हटा दिया गया।

बेंगलोर मेट्रो के निर्माण कार्य के लिए झारखण्ड और पश्चिम बंगाल से बच्चों को मज़दूरी के लिए लाया गया है। यहाँ पर 18 वर्ष से भी कम उम्र के बच्चे धातु की भारी चादरें और खम्भे उठा रहे हैं तथा खुदाई और ड्रिलिंग का काम भी कर रहे हैं। उन्हें मज़दूरी भी कम दी जाती है और बात-बात पर झिड़की और गालियों का सामना करना तो रोज़ की बात है।

लेकिन, श्रम क़ानूनों की खुलेआम धज्जियाँ उड़ाने वाले दिल्ली मेट्रो रेल कारपोरेशन की ही दिखायी राह पर चलते हुए बेंगलोर मेट्रो रेल कॉरपोरेशन भी सारी ज़िम्मेदारी ठेका कम्पनियों पर डालकर अपने को पाक-साफ़ बता रहा है। बाल मज़दूरों से काम लेने की खबर फैली तो बेंगलोर मेट्रो रेल कॉरपोरेशन ने आनन-फानन में प्रेस कान्फ्रेंस करके इस बात का खण्डन किया और उसपर सवाल उठाने वालों को ही गलत बता दिया, जबकि वह बच्चा अब भी चाइल्ड हेल्पलाइन के पास मौजूद है।

बोलते आँकड़े चीखती सच्चाइयाँ

– अमेरिका स्थित एक अध्ययन समूह सिटीग्रुप ने कहा है कि निर्यात आधारित जैसे कि जवाहरात, आभूषण, ऑटो इण्डस्ट्री और टेक्सटाइल सबसे ज़्यादा प्रभावित होने वाले उद्योग है जिनमें 2008 के आख़िर में 5,00,000 नौकरियाँ ख़त्म हो गयीं। यह आँकड़ा केवल उस संगठित क्षेत्र का है जो देश की काम करने वाली जनसंख्या का सिर्फ़ 10 प्रतिशत है।

– अमेरिका में दिसम्बर 1974 के बाद सबसे ज़्यादा नौकरियाँ जाने के आँकड़े को छूते हुए 2008 की शुरुआत से अब तक 30 लाख नौकरियाँ ख़त्म हो गयी हैं। यह गिरावट द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अब तक की सबसे बड़ी गिरावट है।

– अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने वैश्विक बेरोज़गारी के 2 से 5 करोड़ होने का पूर्वानुमान लगाया है।

– विश्व बैंक का पूर्वानुमान है कि मन्दी के चलते 2008 के मुक़ाबले 2009 में औद्योगिक उत्पादन 15 प्रतिशत तक कम हो सकता है। यह भी बताया गया कि 116 विकासशील देशों में से 94 देशों में आर्थिक विकास में कमी आयी है। इनमें से 43 देशों में ग़रीबी का स्तर ऊँचा है।

– पिछले साल नवम्बर में सरकार और विपक्ष द्वारा आलोचना करने के बाद हमारे देश के उद्योग संगठन एसौचेम ने कुछ उद्योग क्षेत्रों की नौकरियों में 25-30 प्रतिशत कमी आने की अपनी रिपोर्ट को वापस ले लिया था।

– राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे संस्थान के अनुसार भारत में शहरी ग़रीबी 25 प्रतिशत से ज़्यादा है। शहरों में 8 करोड़ से ज़्यादा लोग ग़रीबी में जीते हैं। यह संख्या मिस्र की जनसंख्या के बराबर है। शहरी ग़रीबी अरक्षित समूहों जैसे महिलाओं, बच्चों और बूढ़ों की विशेष ज़रूरतों के अलावा रहने, साफ़ पानी, साफ़-सफ़ाई, स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा और रोज़गार की समस्याएँ पैदा करती है।

– 2001 की जनगणना के मुताबिक़ बड़े शहरों की शहरी आबादी का 22.6 प्रतिशत हिस्सा यानी लगभग सवा चार करोड़ लोग झुग्गियों में रहते हैं। यह मोटे तौर पर स्पेन या कोलम्बिया के आकार के बराबर है।

– झुग्गियों में रहने वाले सबसे ज़्यादा लोग, लगभग एक करोड़ 12 लाख, महाराष्ट्र में हैं। झुग्गियों की आबादी बढ़ी है लेकिन झुग्गियों की संख्या कम हुई है यानी सघन हुई हैं।

– संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम ने जी-20 देशों की बैठक में कहा कि मन्दी का असर ग़रीब देशों में कहीं ज़्यादा पड़ता है सिर्फ़ नौकरी जाने या आमदनी कम होने के तौर पर ही नहीं, बल्कि स्वास्थ्य और शिक्षा सूचकों – जीवन सम्भाव्यता, स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या और पढ़ाई पूरी करने वाले बच्चों की संख्या में यह दिखायी देता है। आर्थिक मन्दी की सबसे ज़्यादा मार झेलने वाले लोगों में ग़रीब देशों की महिलाएँ, बच्चे और ग़रीब होते हैं। हाल में मन्दी के दौरान के आँकड़े बताते हैं कि स्कूली पढ़ाई छुड़वाने वाले बच्चों में लड़कों की तुलना में लड़कियों की संख्या बहुत ज़्यादा थी।

– मन्दी के नतीजे में चीज़ें महँगी होती हैं, ग़रीबी बढ़ती है और ग़रीबी बढ़ना अपने आप मृत्यु दर बढ़ने में बदल जाता है। जैसेकि सकल घरेलू उत्पाद में 3 प्रतिशत की कमी को प्रति 1000 शिशुओं के जन्म पर 47 से 120 और ज़्यादा मृत्यु दर से जोड़ा जा सकता है। विकासशील देशों में उस देश के अमीर बच्चों की तुलना में ग़रीब बच्चों के मरने की सम्भावना चार गुना बढ़ गयी है और लड़कों की तुलना में लड़कियों की शिशु मृत्युदर पाँच गुना बढ़ गयी है।

– यह संकट ग़रीब देशों में कई लोगों के लिए जीवन और मौत का सवाल है और आर्थिक विकास, स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या और मृत्यु दर के पुराने स्तर पर पहुँचने में कई साल लग सकते हैं। अनुमान के मुताबिक़ 2010 में आर्थिक स्थिति बहाल होने तक मानव विकास को पहुँची चोट गम्भीर होगी और सामाजिक बहाली में कई साल लगेंगे। पुराने संकट का इतिहास बताता है कि इसके दुष्प्रभाव 2020 तक पड़ते रहेंगे।

मई दिवस पर याद किया मज़दूरों की शहादत को

बिगुल संवाददाता

गोरखपुर

नौजवान भारत सभा, बिगुल मज़दूर दस्ता और अखिल भारत नेपाली एकता मंच ने मिलकर अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस मनाया और भारत एवं नेपाल की मेहनतकश जनता के भाईचारे को और मज़बूत बनाने का संकल्प लिया।

मई दिवस के दिन सुबह ही गोरखपुर की सड़कें "दुनिया के मज़दूरों एक हो", "मई दिवस ज़िन्दाबाद", "साम्राज्यवाद-पूँजीवाद का नाश हो", "भारत और नेपाली जनता की एकजुटता ज़िन्दाबाद", "इन्क़लाब ज़िन्दाबाद" जैसे नारों से गूँज उठीं। नगर निगम परिसर में स्थित लक्ष्मीबाई पार्क से शुरू हुआ मई दिवस का जुलूस बैंक रोड, सिनेमा रोड, गोलघर, इन्दिरा तिराहे से होता हुआ बिस्मिल तिराहे पर पहुँचकर सभा में तब्दील हो गया। जुलूस में शामिल लोग हाथों में आकर्षक तख़्तियाँ लेकर चल रहे थे जिन पर 'मेहनतकश जब जागेगा, तब नया सवेरा आयेगा', 'मई दिवस का है पैग़ाम, जागो मेहनतकश अवाम' जैसे नारे लिखे थे।

बिस्मिल तिराहे पर सभा में नौजवान भारत सभा के प्रशान्त ने कहा कि क़रीब सवा सौ साल पहले इंसाफ़ और बराबरी पर आधारित नया समाज बनाने का सपना देखते हुए शिकागो के मज़दूर नेताओं ने फाँसी का फन्दा चूमा था। इस लम्बे अरसे के दौरान दुनिया के बहुत बड़े भाग में मेहनतकशों ने अपना राज क़ायम करके दिखा दिया कि पूँजीवादी शोषण से मुक्त एक सुन्दर समाज का निर्माण सम्भव है। मज़दूर आन्दोलन के ग़द्दारों और भितरघातियों की वजह से पूँजीपतियों का राज क़ायम हो गया और आज भी लाल झण्डा उड़ाने वाले नक़ली कम्युनिस्ट मज़दूर आन्दोलन की राह के सबसे बड़े रोड़े बने हुए हैं।

नौभास के अपूर्व तथा अवधेश ने मज़दूरों का आह्वान किया कि वे चुनावी पार्टियों की पिछलग्गू यूनियनों के जाल में फँसने के बजाय अपनी स्वतन्त्र यूनियनें गठित करें।

अखिल भारत नेपाली एकता मंच के केन्द्रीय सलाहकार एम.पी. शर्मा ने भारत और नेपाल की मेहनतकश जनता के भाईचारे को याद करते हुए कहा कि नेपाल में क्रान्तिकारी शक्तियों की जीत से बौखलाये प्रतिक्रियावादी इस एकता और भाईचारे को बिगाड़ने की कोशिश कर रहे हैं पर उन्हें क़ामयाबी नहीं मिलेगी। अखिल भारत नेपाली एकता मंच के अविनाश थापा और रंजन केसी ने भी सभा को सम्बोधित किया। सभा का संचालन नौभास के प्रमोद ने किया।

गोरखपुर में मई दिवस के अवसर पर निकला जुलूस

दिल्ली

यहाँ बिगुल मज़दूर दस्ता और बादाम मज़दूर यूनियन की ओर से करावलनगर इलाक़े में मज़दूरों के बीच छोटी-छोटी नुक्कड़ सभाएँ करते हुए पर्चे बाँटे गये। इन पर्चों में मज़दूरों का आह्वान किया गया था कि वे मई दिवस की क्रान्तिकारी विरासत को याद करें तथा निराशा और बिखराव से उबर कर अपने जुझारू संगठन बनाने के लिए आगे आयें।

लुधियाना

अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस के अवसर पर मई दिवस के महान शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए कारख़ाना मज़दूर यूनियन लुधियाना और नौजवान भारत सभा की ओर से लुधियाना की चण्डीगढ़ रोड पर स्थित ई. डब्ल्यू. एस. कालोनी में मई दिवस श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया। कालोनी के निवासियों सहित लुधियाना के अन्य इलाक़ों से मज़दूर व नौजवान मई दिवस के शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए पहुँचे।

सबसे पहले लाल झण्डा फहराकर मई दिवस के शहीदों को इन्क़लाबी सलामी दी गयी। इसके साथ ही 'मई दिवस के शहीद अमर रहें', 'अमर शहीदों का पैग़ाम, जारी रखना है संग्राम', 'दुनिया के मज़दूरो एक हो', 'इन्क़लाब ज़िन्दाबाद' आदि इन्क़लाबी नारों के साथ आसमान गूँज उठा। क्रान्तिकारी मज़दूर शहीदों की याद में दो मिनट का मौन रखा गया।

कारख़ाना मज़दूर यूनियन लुधियाना के संचालक राजविन्दर ने सभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि मई दिवस के शहीदों की शहादत हमें मालिकों के ख़िलाफ़ अपने हक़-अधिकारों की जंग जारी रखने के लिए ललकार रही है। उन्होंने कहा कि मई दिवस के शहीदों का पैग़ाम हमें हमेशा याद रखना होगा कि मज़दूरों ने आज तक जो भी हासिल किया है वह लुटेरों के ख़िलाफ़ लड़कर हासिल किया है न कि किसी ने रहम खाते हुए भेंट किया है। उन्होंने कहा कि आज के दिन मई दिवस के शहीदों को सच्ची श्रद्धांजलि यही हो सकती है कि हम उनके इस पैग़ाम पर अमल करते हुए अपने हक़-अधिकारों को हासिल करने के लिए मज़दूरों और अन्य शोषित वर्गों को जगायें, संगठित करें और संघर्ष की राह चलें।

'बिगुल' के सम्पादक सुखविन्दर ने कहा कि मौजूदा हालात बता रहे हैं कि पूँजीवाद अमर नहीं है। इसे तबाह होना ही होगा। और इसकी तबाही एक ही वर्ग के हाथों होगी और वह है मज़दूर वर्ग। उन्होंने कहा कि मौजूदा विश्वव्यापी आर्थिक संकट ने एक बार फिर यह सिद्ध कर दिया है कि पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तरविरोध इतने गहरे हैं कि इनका हल असम्भव है। अगर मानवता को ग़रीबी, लूट, अन्याय, ग़ैरबराबरी, तबाही-बरबादी से निकालना है तो पूँजीवाद को तबाह होना होगा। उन्होंने कहा कि चुनावों के ज़रिये बदलाव नहीं आ सकता। चुनाव तो सिर्फ़ शासन करने वाले व्यक्तियों में बदलाव ला सकता है, न कि व्यवस्था में। लुटेरी व्यवस्था की तबाही चुनाव के नहीं इन्क़लाब के ज़रिये होगी। उन्होंने कहा कि मई दिवस के शहीदों को महज़ रस्मी तौर पर श्रद्धांजलि अर्पित करने का कोई मतलब नहीं। श्रद्धांजलि देने का अर्थ है कि हम उन शहीदों की क़ुर्बानियों को सच्चे दिल के याद करते हुए अपनी अन्तरात्मा को आवाज़ दें और उनके देखे हुए शोषण रहित समाज के सपने को साकार करने का प्रण लें।

सभा को कारख़ाना मज़दूर यूनियन लुधियाना के समिति सदस्य लखविन्दर और नौजवान भारत सभा की पंजाब कमेटी के संचालक परमिन्दर, जनवादी अधिकार सभा की पंजाब समिति के सदस्य डॉ. हरबंस गरेवाल, कालोनी निवासी गिरधारी लाल ने भी सम्बोधित किया। मंच संचालन कारख़ाना मज़दूर यूनियन के खजांची अजयपाल ने किया।

अन्त में सभा में एकत्र हुए सभी लोगों ने इन्क़लाबी नारे लगाते हुए कालोनी में पैदल मार्च निकाला।

चेन्नई के सफ़ाई कामगारों की हालत देशभर के सफ़ाईकर्मियों का आईना है

मशहूर भारतीय फ़िल्मकार सत्यजित रे ने अपनी एक फ़िल्म अमेरिका में प्रदर्शित की तो पहले शो में ही बहुत से अमेरिकी फ़िल्म बीच में ही छोड़कर आ गये क्योंकि सत्यजीत रे ने फ़िल्म के एक सीन में भारतीय लोगों को हाथों से खाना खाते हुए दिखाया था जिसे देखकर उन्हें वितृष्णा होने लगी थी। लेकिन अगर उन्हें इंसान के हाथों से सीवरेज की सफ़ाई होती दिखला दी जाती तो शायद वे बेहोश हो जाते। सिर्फ़ अमेरिकी ही क्यों, इस नर्क के दर्शन से तो बहुत से भारतीय भी बेहोश हो जायेंगे। लोग अपने घरों में साफ़-सुथरा टायलट इस्तेमाल करते हैं लेकिन वे शायद ही कभी सोचते हों कि उनके इस टायलट को साफ़ रखने के लिए इस दुनिया में ऐसे भी लोग हैं जो अपनी जान दे देते हैं। सिर्फ़ इसलिए कि दूसरे लोग एक साफ़-सुथरी, ''हाइजेनिक'' ज़िन्दगी जी सकें।

बहुत सारी ज़िन्दगियाँ इस तरह की भी हैं जो हर रोज़ इंसान की गन्दगी से भरे गटरों-मैनहोलों आदि में उतरती हैं। महज़ 90 या हद से हद 110 रुपये की दिहाड़ी कमाने के लिए। पिछले दिनों चेन्नई म्यूनीसिपल कार्पोरेशन सम्बन्धी आयीं रिपोर्टें कुछ ऐसे ही तथ्य पेश करती हैं। चेन्नई मैट्रो जल आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड का कहना है कि 24 मई 2003 और 17 अक्टूबर 2008 के बीच 17 सीवर कर्मचारियों की मौत, मैनहोलों या गटर की सफ़ाई करते समय गन्दी ज़हरीली गैस चढ़ने से हो गयी। सफ़ाई कर्मचारियों की ट्रेडयूनियनों का कहना है कि यह गिनती पिछले दो दशकों में 1,000 के नज़दीक पहुँचती है। यही नहीं जो कामगार ज़िन्दा भी हैं, वे हर समय कार्बन मोनोऑक्साईड, हाइड्रोजन सल्फ़ाइड और मीथेन जैसी ज़हरीली गैसों के सीधे सम्पर्क में रहने से कई प्रकार की साँस की बीमारियों के शिकार हैं। यही नहीं, दस्त, टाइफ़ाइड और हैपीटाइटस-बी इन कामगारों में पाये जाने वाले सामान्य रोग हैं। ई. कौली नामक बैक्टीरिया पेट के बहुत गम्भीर रोगों का जन्मदाता है और क्लोसटरीडम टैटनी नामक बैक्टीरिया खुले जख्मों के सीधे सम्पर्क में आने से टैटनस का कारण बनता है। ये सारे बैक्टीरिया गन्दे पानी में आमतौर पर पाये जाते हैं और चमड़ी के रोग इतने हैं कि गिने नहीं जा सकते।

चेन्नई के 5.63 लाख घरों के कनेक्शनों वाला 78,861 मैनहोलों सहित 2,671 किलोमीटर लम्बे सीवरेज नेटवर्क को सँभालने के लिए सिर्फ़ 4,000 ही कर्मचारी हैं जबकि 1978 में इनकी गिनती 11,000 थी। इस सारी प्रक्रिया में जो सबसे अमानवीय बात है वह यह है कि आज भी मैनहोलों को साफ़ करने के लिए सफ़ाई कर्मचारी उनके अन्दर उतरते हैं और सारी सफ़ाई हाथों से करते हैं। इम्पलायमेण्ट ऑफ़ मैनुअल स्कैवेंजर्स एण्ड कंस्टरक्शन ऑफ़ ड्राई लैटरीन्ज़ (प्रोविजनल) एक्ट 1993 के तहत मानवीय हाथों से मैनहोल या गटर तो क्या घरों के सैप्टिक टैंक भी साफ़ करना ग़ैर-क़ानूनी है। लेकिन हमारे देश के अन्य सभी क़ानूनों की तरह यह क़ानून भी महज़ काग़ज़ी ही है। इस क़ानून की धज्जियाँ उड़ते हुए आप किसी भी मैनहोल पर चलते काम के समय देख सकते हैं। यहाँ तक कि इन सफ़ाई कर्मचारियों को सुरक्षा के इन्तज़ाम तक मुहैया नहीं करवाये जाते। क़ानूनन ऑक्सीजन सिलण्डर हर समय सफ़ाई कर्मचारी के पास होना चाहिए, लेकिन भ्रष्टाचार के चलते यह हो पाना सम्भव ही नहीं है। बड़ी गिनती में सफ़ाई कर्मचारी ठेके पर भर्ती किये जाते हैं। इतने बड़े शहर चेन्नई में मैनहोलों के बीच की सिल्ट साफ़ करने के लिए अगर उन्नत तकनीक अपनायी जाये तो होने वाली मौतें कम की जा सकती हैं। वैसे तो तमिलनाडु सरकार ने पिछले कई वर्षों से अण्डरग्राउण्ड सीवरेज स्कीम का शोशा भी छोड़ रखा है। जिसके तहत सभी सीवरेज महकमे का मशीनीकरन किया जायेगा। इस स्कीम की हवा तभी निकलती दिखती है जब यह पता चलता है कि 148 नगर निगमों में से सिर्फ़ 6 नगर निगमों में ही यह स्कीम पूरी हो पायी है।

उपरोक्त दिये गये तथ्यों में चेन्नई के सफ़ाई कामगारों की हालत का ही पता नहीं चलता बल्कि यह तो पूरे देश के सफ़ाई कामगारों की ज़िन्दगी की एक धुँधली सी तस्वीर है जो हमेशा ख़ूबसूरत शहरों की परतों के नीचे दबी रहती है। असल तस्वीर इससे भी कहीं भयानक है।

– अजयपाल

प्रवासी मज़दूर : चिकित्सा सेवाओं के शरणार्थी

बुनियादी चिकित्सा सुविधाओं से भी वंचित रहते हैं प्रवासी मज़दूर

हर साल करोड़ों स्त्री-पुरुष गाँवों में फ़सल का काम ख़त्म होते ही रोज़गार की तलाश में देश के महानगरों की ओर चल पड़ते हैं। निर्माणस्थलों, ईंटभट्ठों और पत्थर की खदानों में कमरतोड़ काम करने हुए ये रेल की पटरियों के नीचे या सड़कों के किनारे, या गन्दे नालों के किनारे बोरी या पॉलिथीन की झुग्गियों में रहते हैं, और अक्सर आधा पेट खाकर ही गुज़ारा कर लेते हैं

ऐसे नारकीय हालात में शरीर का तमाम तरह की बीमारियों से ग्रस्त होना लाज़िमी ही है, फिर भी ये दर्द-तकलीफ़ की परवाह न करके काम में लगे रहते हैं। सरकारी अस्पतालों की सुविधाएँ उन्हें अक्सर मिल नहीं पातीं – ठेकेदार छुट्टी नहीं देता, अनजान शहर में अस्पताल दूर होते हैं और उनके पास राशन कार्ड आदि भी नहीं होते। निजी डॉक्टर गली के ठगों की तरह उनकी जेब से आख़िरी कौड़ी भी हड़प लेने की फ़िराक़ में रहते हैं। ज़्यादातर ठेकेदार इन प्रवासी मज़दूरों को पूरी मज़दूरी नहीं देते। उन्हें बस किसी तरह दो जून पेट भरने लायक़ मज़दूरी दी जाती है, बाक़ी ठेकेदार अपने पास रखे रहता है कि काम पूरा होने पर इकट्ठा देगा। लेकिन अक्सर इसमें भी काफ़ी रक़म धोखाधड़ी करके मार ली जाती है। ऐसे में अगर कोई गम्भीर रूप से बीमार हो गया – और कमरतोड़ मेहनत, कुपोषण तथा गन्दगी के कारण अक्सर ऐसा होता ही रहता है – तो शहर में रहकर इलाज करा पाना उसके बस में नहीं होता। अक्सर तो अपनी जमा-पूँजी लुटेरे डॉक्टरों के हवाले करके उन्हें वापस गाँव लौटना पड़ जाता है।

कैसी विडम्बना है! एक तरफ़ लोग बेहतर इलाज के लिए दूर-दराज़ से शहर में आते हैं, वहीं ये प्रवासी मज़दूर शहरों में इलाज नहीं करा पाते और तिलतिलकर मरने या अपाहिज की ज़िन्दगी गुज़ारने के लिए गाँव लौट जाते हैं।

छत्तीसगढ़ की ग्रामीण आबादी के बीच काम कर रही एक संस्था 'जन स्वास्थ्य सहयोग' के चिकित्सकों को ऐसे कई मज़दूर मिले जो दिल्ली, उसके आसपास और पंजाब के बड़े शहरों से सिर्फ़ इलाज करवाने के लिए छत्तीसगढ़ जैसे पिछड़े इलाक़े में वापस लौट आये। लौटने वाले मज़दूरों ने इन बड़े शहरों यानी तथाकथित विकास के केन्द्रों की सरकारी अस्पतालों की ख़राब हालत और प्राइवेट डॉक्टरों की खुली लूट की अनेकों घटनाएँ बयान कीं। संस्था के डॉ. अनुराग भार्गव ने अपनी रिपोर्ट में इन घटनाओं का उल्लेख किया है।

एक दिन एक आदमी बहुत कमजोर हो चुकी औरत को लेकर अस्पताल आया। उन्होंने बताया कि वे सीधे दिल्ली के पास गुड़गाँव से आ रहे हैं। वहाँ यह औरत (गीता) और उसका पति गुड़गाँव के निर्माणाधीन मॉल में बेलदारी करते थे। एक दिन उसकी नाक में एक फोड़ा हो गया। दो-तीन दिन में यह फैलकर आँख तक पहुँच गया और सूजन फैलकर दायें पैर तक पहुँच गयी। गली-मोहल्ले के डॉक्टर से दवाई लेने के बावजूद कोई फ़ायदा तो नहीं हुआ अलबत्ता उनकी सारी जमा-पूँजी लगभग 3,500 ख़र्च हो गये, जो उनकी कई महीने की मेहनत की बचत थी। अब उनके पास गाँव जाकर इलाज कराने के सिवा कोई रास्ता नहीं बचा था। 30 साल की उम्र में गीता का वज़न 22 किलो रह गया था, उसकी दायीं आँख बेकार हो गयी और दूसरी में भी रोशनी बहुत कम रह गयी। उसके दायें पैर में बहुत बड़ा फोड़ा था। महज़ एक साधारण बैक्टीरिया के संक्रमण ने फैलकर इतना नुक़सान कर डाला, क्योंकि लगातार कुपोषण और कड़ी मेहनत से उसका शरीर बिल्कुल जर्जर हो चुका था।

उसके पति ने बताया कि वे पहली बार शहर में काम करने गये थे। बीमार पड़ने से कुछ दिन पहले तक गीता सिर पर 25-25 किलो वज़न ढोती थी जिसके लिए उसे 50 रुपये दिहाड़ी मिलती थी।

अजीत नाम का एक नौजवान मज़दूर उनके अस्पताल में आया तो उसकी हालत बेहद ख़राब थी। कुछ ही दिनों पहले घर लौटा है और श्वसन के एक हल्के संक्रमण ने बिगड़कर यह हालत कर दी है। वह जम्मू से 150 किलोमीटर दूर सेना के लिए घर बनाने का काम करने गया था। उसे रोज़ाना सिर्फ़ 75 रुपये मिलते थे। उसे दिल के वॉल्व ख़राब करने वाली दिल की बीमारी थी और उसका हीमोग्लोबीन सिर्फ़ 6 (स्वस्थ मनुष्य का 13 होता है) था। डॉक्टरों के लिए यह बहुत हैरानी की बात थी कि इस हालत में वह काम कैसे कर रहा था। साँस का एक मामूली इन्फ़ेक्शन होते ही उसकी हालत बहुत ख़राब हो गयी और उसे 2,000 किलोमीटर लौटकर घर आना पड़ा। हालाँकि उसके काम की जगह पर अस्पताल था पर वह सिर्फ़ सेना के लिए था उस जैसे लोगों के लिए नहीं। बाद में उसे आईसीयू में भर्ती करवाने के लिए स्थानीय मेडिकल कॉलेज को लिखा गया, जहाँ वह 21 साल की उम्र में अपने पीछे एक जवान पत्नी और छोटा बच्चा छोड़कर चल बसा।

श्रवण नाम के एक छत्तीसगढ़िया मज़दूर को टीबी होने पर सरकारी अस्पताल में दवा नहीं दी गयी क्योंकि उसके पास राशन कार्ड नहीं था! उसी सरकारी डॉक्टर ने अपनी क्लिनिक में बुलाकर उसे 1,800 रुपये की दवाएँ लिख दीं। पैसे ख़त्म होने लगे तो वह गाँव लौट आया। तब तक उसके फेफड़े टीबी से पूरी तरह संक्रमित हो चुके थे और वह ख़ून की उल्टियाँ कर रहा था। एक दिन वह किसी को कुछ बताये बिना घर छोड़कर चला गया...

ये चन्द उदाहरण हैं। ऐसी स्थितियाँ पूरे देश के प्रवासी मज़दूरों की हैं। वैसे तो मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था के ज़्यादा से ज़्यादा मानवद्रोही होते जाने पर स्वास्थ्य सुविधाएँ पूरी आम आबादी के लिए ही मुश्किल हो गयी हैं। लेकिन सही दवा-इलाज न मिलने से प्रवासी मज़दूर सबसे ज़्यादा प्रभावित होते हैं। प्राय: मज़दूरों की छोटी-छोटी बीमारियाँ विकराल रूप लेकर असमय मृत्यु या जीवन-भर की विकलांगता का कारण बन जाती हैं। अक्सर इनकी वजह अच्छा खान-पान या शुरुआती दवा-इलाज ठीक से न मिल पाना होता है। मज़दूरों की बदतर जीवन-स्थितियाँ भी इन चीज़ों पर बहुत ध्यान देने की इजाज़त नहीं देती हैं। बहुत सारे लोग तो बीमारी के लक्षणों को छोटी-मोटी बीमारी मानकर टालते रहते हैं। इलाज करवाना उनके लिए एक गम्भीर चुनौती होती है। आख़िर में वह तभी इलाज करवाते हैं जब बीमारी के कारण काम करना बिल्कुल दूभर हो जाता है।

बड़े शहरों में रोज़ी-रोटी की तलाश में आने वाले प्रवासी मज़दूरों की ज़िन्दगी वैसे ही काफ़ी मुसीबतों से भरी होती है। सबसे अधिक जोखिम वाली जगहों पर कम तनख़्वाह में इन्हें आसानी से काम मिल जाता है। अक्सर भारी-भरकम निर्माण परियोजनाओं से लेकर लोहे-प्लास्टिक-रबड़ के ख़तरनाक उद्योगों में ऐसे ही प्रवासी मज़दूर काम पर रखे जाते हैं। गन्दी बस्तियों में छोटी-छोटी कोठरियाँ बीमारियों के आशियाने होते हैं। गन्दी बजबजाती नालियों और कूड़े के ढेर के बीच उनकी सेहत लगातार गिरती जाती है। काम की जगहों पर सारे नियम-क़ानूनों को तिलांजलि देकर मालिकों-ठेकेदारों के मनमाफ़िक़ काम करवाया जाता है। सुरक्षा के तमाम इन्तज़ामात सिर्फ़ सरकारी श्रम विभागों की फ़ाइलों की शोभा बढ़ाते हैं। ऐसे में काम की जगहों पर धूल और धुएँ से होने वाली बीमारियाँ और काम के दौरान लगने वाली गम्भीर चोटें आम बात होती हैं। चोट लगने पर हल्की-फुल्की दवा-पट्टी करवा दी जाती है जिसमें ज़्यादा चोट लगने वाले मज़दूर तो अक्सर मौत का शिकार हो जाते हैं। कुल मिलाकर बीमार होने या चोट लगने पर इलाज करवाना मज़दूर के ज़िम्मे होता है। जो अपनी हैसियत के अनुसार कभी पहले प्राइवेट डॉक्टरों के पास और फिर सरकारी अस्पताल जाता है तो कभी पहले सरकारी अस्पतालों के धक्के खाकर मजबूरन प्राइवेट डॉक्टरों की शरण लेता है।

प्रवासी मज़दूरों के साथ सरकारी अस्पतालों में भी दोयम दर्जे का व्यवहार होता है। सरकारी अस्पतालों में उन्हें ज़्यादा धक्कों, ज़्यादा लाइनों का सामना करना पड़ता है और ज़्यादा चक्कर लगाने पड़ते हैं। यह भरम भी जल्द ही टूट जाता है कि यहाँ सबकुछ मुफ्त में होता है। सरकारी अस्पतालों में सिर्फ़ डॉक्टर की फ़ीस और बेड के ख़र्चे के अलावा दवा से लेकर हर ख़र्चा मरीज को ख़ुद करना पड़ता है। क़दम-क़दम पर दवा और जाँच कराने की दुकानों के दलाल मौजूद होते हैं, जिनके चंगुल में एक बार फँसने का मतलब अपनी सारी जमापूँजी उनके हवाले कर देना होता है। अक्सर उनकी सारी जमा-पूँजी इलाज की शुरुआत में ही ख़त्म हो जाती है। बिना काम किये इलाज करवाना और शहर में किराये पर रहना इन्हें तोड़ डालता है। इसके अलावा सरकारी अस्पतालों में होने वाले दुर्व्यवहार, दुत्कार और भयंकर लापरवाही से तंग आकर कई मरीज पूरा इलाज करवाये बिना ही लौट जाते हैं। कुछ गाँव लौटकर, तो कुछ शहरों में एक झूठी उम्मीद के साथ फिर से प्राइवेट डॉक्टरों के पास पहुँच जाते हैं।

कुल मिलाकर प्रवासी मज़दूरों की स्थिति चिकित्सा क्षेत्र के शरणार्थी जैसी होती है जो इलाज के लिए इधर-उधर मारा-मारा फिरता है लेकिन आख़िर में उसके हाथ कुछ नहीं लगता।

अकाल मौत के मुँह में समा जाने वाले ये वही मज़दूर होते हैं जो दिल्ली, लखनऊ, पंजाब जैसे बड़े शहरों में आलीशान पुल, सड़कें बनाते हैं। नये-नये खुल रहे आलीशन फ़ाइवस्टारनुमा अस्पतालों की इमारतें बनाते हैं! देश को तरक़्क़ी के रास्ते पर बढ़ाने वाले इन मज़दूरों का जिस्म जब छलनी हो जाता है तो इन्हें दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक दिया जाता है।

– कपिल स्वामी

दमन-उत्पीड़न से नहीं कुचला जा सकता मेट्रो कर्मचारियों का आन्दोलन

(पेज 3 से आगे)

दो दिन बाद सभी के ज़मानत पर रिहा होकर फिर से आन्दोलन के काम में जुट जाने से बौखलाये मेट्रो प्रशासन ने कर्मचारियों की क़ानूनी माँगों पर ध्यान देने के बजाय उनका उत्पीड़न और तेज़ कर दिया। 8 मई को जब वे काम पर पहुँचे तो प्रदर्शन में शामिल होने वाले मेट्रो फ़ीडर सेवा के 30 कर्मचारियों के नामों की सूची डिपो के बाहर लगी थी और उन्हें ड्यूटी पर लेने से मना कर दिया गया। यही नहीं, जिन कर्मचारियों ने 5 मई को बाकायदा छुट्टी ली थी, उन पर 120 रुपये से लेकर 3000 हज़ार रुपये का जुर्माना लगा दिया गया।

लेकिन 'दिल्ली मज़दूरों को रौंदो कॉरपोरेशन' (डीएमआरसी) की शह पर हो रही इन तमाम दमनात्मक कार्रवाइयों से मज़दूरों का हौसला पस्त होने के बजाय और बढ़ा है। इन कदमों के ख़िलाफ़ कर्मचारियों ने क्षेत्रीय श्रम आयोग में शिकायत दर्ज

मेट्रो के मज़दूरों को गिरफ़्तार करके ले जाती हुई दिल्ली पुलिस

कराके जुर्माना हटाने और नौकरी पर बहाल कराने की माँग की है। साथ ही, अपने संगठन को और व्यापक बनाने की कोशिशें भी तेज़ कर दी हैं। मज़दूर अपनी माँगों को लेकर लम्बी लड़ाई करने के लिए तैयार हैं।

मेट्रो कामगार संघर्ष समिति का कहना है ठेका मज़दूरों के अधिकारों को लेकर मेट्रो प्रशासन लगातार अपनी ज़िम्मेदारी से मुकर रहा है जबकि प्रधान नियोक्ता होने के नाते मज़दूरों के अधिकारों को सुनिश्चित करना उसी की मुख्य जिम्मेदारी है। संघर्ष समिति द्वारा आर.टी.आई. के तहत माँगी जानकारी के जवाब में मेट्रो प्रशासन ने कहा है कि उसके पास अपने ठेका कर्मचारियों के न तो वेतन रिकॉर्ड हैं और न ही मज़दूरों से सम्बन्धित अन्य कोई रिकॉर्ड हैं।

ऐसे में साफ़ है कि मेट्रो प्रशासन के वे सारे दावे झूठे हैं कि वह ठेका मज़दूरों के सभी रिकॉर्डों की जाँच करता है। संघर्ष समिति ने मेट्रो प्रशासन व ठेका कम्पनियों के गठजोड़ के ख़िलाफ़ क़ानूनी तथा आन्दोलन के रास्ते से संघर्ष को आगे बढ़ाने का आह्वान किया है।

एक बार फिर मुक्ति का परचम उठाओ! पूँजी की बर्बर सत्ता के ख़िलाफ़ फ़ैसलाकुन लड़ाई की तैयारी में जुट जाओ!!

(पेज 1 से आगे)

है। चुनावी पार्टियों के पिछलग्गू वे तमाम ट्रेडयूनियनबाज़ घाघ मई दिवस का परचम लहरा रहे हैं जिनका काम ही मज़दूरों को महज़ दुअन्नी-चवन्नी की लड़ाई में उलझाये रखकर अपना उल्लू सीधा करना है, अपने आकाओं की चुनावी गोट लाल करना है और एक धोखे की टट्टी के रूप में इस व्यवस्था की हिफ़ाज़त करना है। पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी (सरकार) में मज़दूरों का महकमा देखने वाला मुलाजिम (श्रम मन्त्री) लगातार मज़दूरों को ज़्यादा से ज़्यादा निचोड़ने और उजरती गुलामी की डण्डा-बेड़ियों को मज़बूत करने के क़ानूनी बन्दोबस्त करता रहता है और मई दिवस के दिन देश के मज़दूरों के नाम सन्देश जारी करता है। और हद तो तब हो जाती है जब पता चलता है कि कई एक कारख़ानों के मालिकान भी मई दिवस के दिन मज़दूरों को लड्डू बँटवाते हैं या यूनियन-मैनेजमेण्ट मिलकर प्रीतिभोज का आयोजन करते हैं। मई दिवस के शहीदों का भला इससे बढ़कर भी कोई अपमान हो सकता है?

इससे अधिक अफ़सोस की बात क्या हो सकती है कि इतिहास के जिस दौर में, विगत एक शताब्दी से भी अधिक समय के दौरान मज़दूर वर्ग की राजनीतिक लड़ाई सबसे अधिक कमज़ोर अवस्था में दिख रही है, ऐन उसी दौर में उस महान मई दिवस के अर्थ और महत्त्व को सबसे अधिक विकृत-विघटित कर दिया गया है। मज़दूर वर्ग को अर्थवाद, ट्रेडयूनियनवाद और संसदवाद की चौहद्दी से बाहर निकालकर, व्यापक मज़दूर एकता की ज़मीन पर राजनीतिक संघर्षों को संगठित करने की शुरुआत करके ही आज हम मई दिवस की गरिमा वास्तव में बहाल कर सकते हैं और सही मायने में मई दिवस के महान शहीदों की शानदार परम्परा के सच्चे वारिस बन सकते हैं।

●

आम मज़दूर साथियों के लिए यह बेहद ज़रूरी है कि वे राजनीतिक संघर्ष और आर्थिक संघर्ष के बीच के अन्तर को भलीभाँति समझ लें। तभी उन्हें मई दिवस के ऐतिहासिक महत्त्व का वास्तव में भान हो सकेगा। किसी कारख़ाना या उद्योग विशेष में काम करते हुए मज़दूर अपनी पगार, पेंशन भत्ते आदि को लेकर आर्थिक संघर्ष करते हैं और इस प्रक्रिया में उन्हें अपनी संगठित शक्ति का अहसास होता है तथा वे लड़ना सीखते हैं। लेकिन अलग-अलग उद्योगों या कारख़ानों के मज़दूर अपने-अपने मालिकों के ख़िलाफ़ अलग-अलग आर्थिक लड़ाइयाँ लड़ते हैं उनकी यह लड़ाई एक समूचे वर्ग के रूप में, समूचे पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ नहीं होती। लेकिन साथ ही, वे कुछ ऐसी रोज़मर्रा की लड़ाइयाँ भी लड़ना शुरू करते हैं जो समूचे मज़दूर वर्ग की साझा माँगों को लेकर होती हैं – जैसे आवास, स्वास्थ्य आदि सुविधाओं की माँग, पक्की नौकरी की गारण्टी या ठेका प्रथा की समाप्ति की माँग (सभी मज़दूरों के लिए) न्यूनतम मज़दूरी तय करने की माँग या काम के घण्टे निर्धारित करने की माँग आदि। ये रोज़मर्रा की लड़ाइयाँ आगे बढ़ती हैं तो सभी पेशों के मज़दूरों को इन आम माँगों पर एकजुट कर देती हैं और अपने-अपने पेशों से बँधी हुई उनकी संकुचित मनोवृत्ति को तोड़ देती हैं। ये राजनीतिक संघर्ष पूरे पूँजीपति वर्ग और उनकी राज्यसत्ता के ख़िलाफ़ समूचे मज़दूर वर्ग को एकजुट कर देते हैं और जनता के अन्य वर्गों के साथ भी उनके मोर्चाबन्द होने का आधार तैयार कर देते हैं। मज़दूर वर्ग के ये राजनीतिक संघर्ष पूँजीपति वर्ग की राज्यसत्ता को मजबूर करते हैं कि वह क़ानून बनाकर उनके काम के घण्टे निर्धारित करे, उनकी सेवा-शर्तें तय करे, उनकी नौकरी की सुरक्षा की कमोबेश गारण्टी दे तथा मालिकों के ऊपर क़ानूनी बन्दिशें लगाकर उन्हें मज़दूरों को विभिन्न बुनियादी सुविधाएँ देने के लिए बाध्य करे ताकि संगठित मज़दूरों की शक्ति पूँजीवादी व्यवस्था के ही सामने अस्तित्व का संकट न खड़ा कर दे। लेकिन किसी भी पूँजीवादी व्यवस्था में मज़दूर वर्ग द्वारा लड़कर हासिल किये जाने वाले राजनीतिक अधिकारों की एक सीमा होती है, जो धीरे-धीरे मज़दूर वर्ग के सामने साफ़ होती जाती है। पूँजीवादी जनवाद का असली चेहरा तब पूँजीपति वर्ग के अधिनायकत्व के रूप में सामने आ जाता है। तब मज़दूर वर्ग इस सच्चाई को समझ लेने की स्थिति में आ जाता है कि असली सवाल पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों को ही बदल डालने का है और यह काम पूँजीवादी राज्यसत्ता को चकनाचूर किये बिना अंजाम नहीं दिया जा सकता। राजनीतिक संघर्ष करते हुए ही मज़दूर वर्ग एक संगठित वर्ग के रूप में एकजुट होकर पूँजीपति वर्ग के विरुद्ध लड़ना सीखता है, उसे पूँजीवादी व्यवस्था के असली रूप और उसकी सीमाओं का अहसास होता है और वह उन सीमाओं को तोड़ने के लिए आगे क़दम बढ़ाता है। राजनीतिक संघर्ष करते हुए ही मज़दूर वर्ग अपने ऐतिहासिक मिशन से परिचित होता है, सर्वहारा क्रान्ति की अपरिहार्यता और अवश्यम्भाविता से परिचित होता है, उस क्रान्ति के विज्ञान को आत्मसात करता है और समाजवादी व्यवस्था के अग्रदूत की भूमिका निभाने के लिए अपने को तैयार करता है।

मई दिवस

आज घोषणा करने का दिन
हम भी हैं इंसान
हमें चाहिए बेहतर दुनिया
करते हैं ऐलान
घृणित दासता किसी रूप में
नहीं हमें स्वीकार
मुक्ति हमारा अमिट स्वप्न है
मुक्ति हमारा गान

आर्थिक संघर्ष मज़दूर वर्ग का बुनियादी संघर्ष है। इसके ज़रिये वह लड़ना और संगठित होना सीखता है। मुख्यत: ट्रेडयूनियनें इस संघर्ष के उपकरण की भूमिका निभाती हैं और इस रूप में वर्ग-संघर्ष की प्राथमिक पाठशाला की भूमिका निभाती हैं। लेकिन आर्थिक संघर्ष मज़दूर वर्ग को सिर्फ़ कुछ राहत, कुछ रियायतें और कुछ बेहतर जीवनस्थितियाँ ही दे सकते हैं। वे पेशागत संकुचित मनोवृत्ति को तोड़कर मज़दूरों को उनकी व्यापक वर्गीय एकजुटता की ताक़त का अहसास नहीं करा सकते। न ही वे उन्हें अपनी मुक्ति की सम्भाव्यता और पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष की आवश्यकता का अहसास करा सकते हैं। ऐसा केवल राजनीतिक माँगों पर संघर्ष के द्वारा ही सम्भव है।

मज़दूर आन्दोलनों का इतिहास और मज़दूर क्रान्ति का विज्ञान हमें बताता है कि आर्थिक संघर्ष कभी भी अपनेआप, स्वयंस्फूर्त ढंग से राजनीतिक संघर्ष में रूपान्तरित नहीं हो जाते। आर्थिक संघर्षों के साथ-साथ शुरू से ही मज़दूर वर्ग राजनीतिक संघर्षों को भी चलाये, तभी मज़दूर वर्ग पूँजीपति वर्ग के विरुद्ध अपने संघर्ष को आगे बढ़ा सकता है। राजनीतिक संघर्ष तब तक रोज़मर्रा के संघर्षों के अंग के तौर पर प्रारम्भिक अवस्था में होते हैं तभी तक ट्रेडयूनियनों के माध्यम से उनका संचालन सम्भव होता है। एक मंज़िल आती है जब राजनीतिक संघर्ष के लिए सर्वहारा वर्ग के किसी ऐसे संगठन की उपस्थिति अनिवार्य हो जाती है जो सर्वहारा क्रान्ति के विज्ञान की सुसंगत समझदारी से लैस हो। यह संगठन पूँजीवाद के आर्थिक ताने-बाने, राजनीतिक तन्त्र और पूरी सामाजिक संरचना को भलीभाँति समझने के बाद उसके विकल्प का ख़ाका पेश करता है(पूँजीवादी राज्यसत्ता को ध्वस्त करके सर्वहारा राज्यसत्ता की स्थापना करने तथा समाजवाद का निर्माण करने के कार्यक्रम और रास्ते से सर्वहारा वर्ग को शिक्षित करता है और उस रास्ते पर आगे बढ़ने में सर्वहारा वर्ग को नेतृत्व देता है। विश्व मज़दूर आन्दोलन के इतिहास में सर्वहारा वर्ग के हरावल के रूप में ऐसी सर्वहारा पार्टी की धारणा के मूर्त रूप लेते ही ट्रेडयूनियन ऐतिहासिक रूप से "पिछड़े" वर्ग-संगठन की स्थिति में पहुँच गयी। वर्ग-संघर्ष की प्राथमिक पाठशाला वह आज भी है, लेकिन वैज्ञानिक समाजवाद की विचारधारा के मार्गदर्शन में संगठित पार्टी ही पूँजीवादी व्यवस्था का नाश करके सर्वहारा वर्ग की आर्थिक-राजनीतिक-सामाजिक मुक्ति के संघर्ष को अंजाम तक पहुँचा सकती है, यही सर्वहारा क्रान्ति के विज्ञान की – मार्क्सवाद-लेनिनवाद की शिक्षा है और बीसवीं सदी के दौरान इतिहास इसे सत्यापित भी कर चुका है।

मज़दूर क्रान्ति की विचारधारा मज़दूर आन्दोलन में अपनेआप नहीं पैदा हो जाती। उसे उसमें बाहर से डालना पड़ता है। यह काम मज़दूर वर्ग के हरावल दस्ते के रूप में कम्युनिस्ट पार्टी के संगठनकर्ता-कार्यकर्ता अंजाम देते हैं। वे मज़दूरों की रोज़मर्रा की लड़ाइयाँ संगठित करते हुए, पहली ही मंज़िल से उनके बीच लगातार राजनीतिक प्रचार एवं शिक्षा का काम चलाते हैं, आर्थिक संघर्षों के साथ-साथ राजनीतिक संघर्ष भी संगठित करते हैं, उन्हें क्रमश: उन्नत और व्यापक बनाते हैं, इस प्रक्रिया के दौरान मज़दूरों के सर्वाधिक उन्नत तत्त्वों को विचारधारा से लैस करके हरावल दस्ते (पार्टी) में भर्ती करते हैं तथा उनके माध्यम से ट्रेडयूनियनों व अन्य जनसंगठनों-मोर्चों में पार्टी के विचारधारात्मक मार्गदर्शन एवं राजनीति का वर्चस्व (हेजेमनी) स्थापित करने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं।

अर्थवादी मज़दूर वर्ग को तरह-तरह से आर्थिक संघर्षों तक ही सीमित रखने की कोशिश करते हैं, वे मज़दूर वर्ग को राजनीतिक संघर्षों से दूर रखने की या फिर इनके मामले में संयम बरतने की सीख देते हैं। वे यह भी दलील देते हैं कि मज़दूर वर्ग की विचारधारा मज़दूर आन्दोलन के भीतर से स्वयंस्फूर्त ढंग से पैदा हो जाती है। इस तरह वे मज़दूर वर्ग के बीच उसके हरावल दस्तों (पार्टी तत्त्वों) द्वारा सचेतन तौर पर संगठित की जाने वाली राजनीतिक प्रचार एवं आन्दोलन की कार्रवाई को अनुपयोगी बताने की कोशिश करते हैं। वे ट्रेडयूनियनवादी भी इन्हीं के सगे-सहोदर होते हैं (प्राय: ये दोनों एक ही होते हैं) जो अपनी सारी क़वायद ट्रेडयूनियन की चौहद्दी तक ही सीमित रखते हैं और इस चौहद्दी के बाहर मज़दूर चेतना के विकास को हर चन्द कोशिश करके रोकते हैं, क्योंकि तब उनका सारा धन्धा ही चौपट हो जाने का ख़तरा रहता है। जो संसदीय वामपन्थी क्रान्ति के बजाय बुर्जुआ संसद और चुनावों के ही ज़रिये समाजवाद ला देने का धोखा भरा प्रचार करते हैं, उनकी राजनीति अर्थवाद और ट्रेडयूनियनवाद से ही नाभिनालबद्ध होती है। अपने मूल रूप से ये सभी सुधारवाद की ही विविध अभिव्यक्तियाँ हैं जो मज़दूर वर्ग को यह धोखा भरी नसीहत देती हैं कि क्रान्ति के बजाय इसी व्यवस्था में सुधारों का पैबन्द लगाकर काम चलाया जा सकता है। संसदीय वामपन्थ और अर्थवाद की राजनीति चूँकि मार्क्सवाद के सारतत्त्व (वर्ग-संघर्ष और सर्वहारा अधिनायकत्व) में "संशोधन" (यानी वास्तव में तोड़-मरोड़) करने की कोशिश करती है, अत: उसे संशोधनवाद भी कहा जाता है। संशोधनवाद, अर्थवाद, ट्रेडयूनियनवाद जैसी धाराएँ मज़दूर वर्ग को सर्वहारा क्रान्ति के मूल विचार से भटकाकर, पूँजीवादी व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा पंक्ति का काम करती हैं। इतिहास बताता है कि मज़दूर आन्दोलन के इन विभीषणों, जयचन्दों, मीरज़ाफ़रों ने पूँजीवाद की इतनी सेवा की है और इतने नाजुक मौक़ों पर उसकी मदद की है कि उसे याद करके पूँजीपति वर्ग की आँखें भर आयें। यहाँ तक कि जिस समाजवाद का विश्व-पूँजीवाद के बाहरी हमले कुछ न बिगाड़ सके, उसे भी ध्वस्त करने में इन भितरघातियों की ही भूमिका केन्द्रीय रही।

●

उपरोक्त संक्षिप्त चर्चा के आलोक में मज़दूर साथियों के लिए यह समझना कठिन नहीं होना चाहिए कि मई दिवस की परम्परा आज भाँति-भाँति के नक़ली वामपन्थी मदारियों के हाथों किस कदर लांछित और कलंकित हो रही है। मई दिवस दुनिया के मज़दूरों के राजनीतिक चेतना के युग में – राजनीतिक संघर्षों के युग में प्रवेश का प्रतीक विषय है। लेकिन आज वे संसदीय वामपन्थी, अर्थवादी और ट्रेडयूनियनवादी मई दिवस मनाते हैं, जो मज़दूर वर्ग को आर्थिक संघर्षों और संसदीय राजनीति की भूलभूलैया में फँसाये रखना चाहते हैं। हमें जी-जान से जूझकर उस मुक़ाम तक पहुँचने की तैयारी करनी होगी जब मज़दूर वर्ग आगे बढ़कर इन भाँड़ों-विदूषकों के मुखौटे नोच ले और इनके हाथों से मई दिवस का परचम छीन ले।

बेशक हम एक ऐसे समय में जी रहे हैं जब विश्वस्तर पर क्रान्ति की लहर पर प्रतिक्रान्ति की लहर हावी है। सर्वहारा क्रान्तियों के जो प्रथम संस्करण बीसवीं सदी में निर्मित हुए थे, वे भविष्य के लिए क़ीमती सबक़ देने के बाद, टूट-बिखर चुके हैं। श्रम और पूँजी के बीच ऐतिहासिक युद्ध का पहला चक्र श्रम-पक्ष की पराजय के साथ पूरा हुआ है। लेकिन यह इतिहास का अन्त नहीं है। पूँजीवाद अजर-अमर नहीं है। इतिहास का तर्क उसके भीतर समाजवाद के और अधिक शक्तिशाली बीजों को विकसित कर रहा है। श्रम और पूँजी के बीच के विश्व ऐतिहासिक महायुद्ध का दूसरा और निर्णायक चक्र इक्कीसवीं सदी में लड़ा जायेगा। इतिहास का यही तर्क है। मानव समाज का गति-विज्ञान यही बताता है।

लेकिन साथ ही, आज की इस सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता कि पूरी दुनिया में और भारत में, मज़दूर वर्ग की संगठित राजनीतिक लड़ाई आज एकदम कमज़ोर पड़ गयी है और एक तरह से पार्श्वभूमि में ढकेल दी गयी है। यदि राजनीतिक संघर्ष कहीं चल भी रहे हैं तो छिटपुट और स्वयंस्फूर्त रूप में और प्राय: उनका अन्त विघटन और पराजय के रूप में हो रहा है। लेकिन ग़ौर से देखें तो उम्मीद की किरणें हमें इसी अँधेरे के भीतर से फूटती दिखती हैं। विश्वस्तर

(पेज 7 पर जारी)

एक बार फिर मुक्ति का परचम उठाओ! पूँजी की बर्बर सत्ता के ख़िलाफ़ फ़ैसलाकुन लड़ाई की तैयारी में जुट जाओ!!

(पेज 6 से आगे)

पर जारी उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों ने आज एक के बाद एक करके मज़दूरों के उन सभी राजनीतिक अधिकारों को छीनकर उसे एकदम कोने में धकेल दिया है, जो उन्होंने एक शताब्दी से भी अधिक लम्बी अवधि के दौरान कठिन संघर्ष और अकूत क़ुर्बानियों के ज़रिये हासिल किये थे। तरह-तरह की क़ानूनी बन्दिशों से ये राजनीतिक अधिकार इस हद तक छीन लिये गये हैं कि आर्थिक एवं क़ानूनी लड़ाइयों का मैदान भी सिकुड़कर एकदम छोटा हो गया है। श्रम क़ानूनों और श्रम न्यायालयों आदि का कोई मतलब नहीं रह गया है। आर्थिक संघर्षों की सीमाएँ जितनी संकुचित हुई हैं, उसी अनुपात में अर्थवादियों और संसदमार्गी वामपन्थियों का चरित्र भी साफ़ हुआ है। क्रान्ति की उम्मीद मेहनतकश जनता भला उनसे क्या पालेगी, जब वे स्वयं ही क्रान्ति की बातें करना बन्द कर चुके हैं। विश्व पूँजी अपने ढाँचागत संकटों के दबाव से संचालित होकर, अपने सर्वाधिक संगठित सिरे से फ़ासिज़्म की शक्तियों को संगठित कर रही है और उसके आगे संसदीय वामपन्थी एकदम काग़ज़ी और दन्तनखहीन साबित हो रहे हैं।

यानी कुल मिलाकर, यदि वस्तुगत परिस्थितियों की बात की जाये तो कहा जा सकता है कि क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार एवं आन्दोलन के लिए वे अत्यधिक अनुकूल हैं। अर्थवादी और संसदवादी विभ्रम-मोहभ्रम पैदा कर पाने की गुंजाइशें अत्यधिक कम हो गयी हैं। व्यवस्था स्वयं अपनी चौहद्दियों को लोगों की नज़रों के सामने ज़्यादा से ज़्यादा स्पष्ट करती जा रही है। सारी समस्या क्रान्ति के सचेतन कारक तत्त्व के – सर्वहारा वर्ग के हरावल दस्ते के फिर से संगठित होने के मुद्दे पर केन्द्रित है।

हमारे देश में इस समस्या का केन्द्रबिन्दु यह है कि ज़्यादातर सर्वहारा क्रान्तिकारी तत्त्व भी इस केन्द्रीय तत्त्व को पकड़ नहीं पा रहे हैं कि नयी सर्वहारा क्रान्ति का हरावल दस्ता अतीत की राजनीतिक संरचनाओं को जोड़-मिलाकर संघटित नहीं किया जा सकता, बल्कि उसका नये सिरे से निर्माण करना होगा। यानी प्रधान पहलू पार्टी-गठन का नहीं, बल्कि पार्टी-निर्माण का है। भारत में अब तक जिसे कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर कहा जाता रहा है, वह मूलत: और मुख्यत: विघटित हो चुका है। विभिन्न ग्रुपों के बीच राजनीतिक बहस-मुबाहसा करके एकता बनाने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए सर्वहारा वर्ग की एक सर्वभारतीय पार्टी पुनर्गठित कर पाने की प्रक्रिया विगत तीन दशकों के दौरान कहीं नहीं पहुँच सकी है। इसके बुनियादी कारण इस शिविर की और भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन के पूरे इतिहास की विचारधारात्मक कमज़ोरी में निहित रहे हैं, जो अलग से विस्तृत चर्चा की माँग करते हैं। कुछ कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन संसदीय मार्ग के राही बनकर 'भूतपूर्व' विश्लेषण से लैस हो चुके हैं। कुछ ऐसे हैं जो मुँह से क्रान्ति और वर्ग-संघर्ष की बात करते हुए राजनीतिक-सांगठनिक आचरण में सर्वथा सामाजिक-जनवादी दिख रहे हैं और अर्थवादी दलदल में गोते लगा रहे हैं तथा मेंशेविकों से भी घटिया ढंग से सांगठनिक गुन्ताड़े बिठा रहे हैं। कुछ "वामपन्थी" दुस्साहसवाद की राह पर उतना आगे जा चुके हैं कि अब वापसी मुमकिन नहीं और कुछ "वामपन्थी" दुस्साहसवाद और जुझारू अर्थवाद की विचित्र, बदबूदार अवसरवादी बिरयानी पका रहे हैं। ज़्यादातर संगठन आज भी भूमि क्रान्ति का रट्टा मारते हुए जूते के हिसाब से पैर काटकर पंगु हो चुके हैं और धनी किसानों के आन्दोलनों के पुछल्ले, नरोदवाद के विकृत भारतीय संस्करण बन चुके हैं। कुछ मुक्त चिन्तकों के जमावड़े बन चुके हैं और कुछ रहस्यमय गुप्त सम्प्रदाय। शेष जो नेकनीयत हैं, उनकी स्थिति आज वामपन्थी बुद्धिजीवी ग्रुपों से अधिक कुछ भी नहीं है।

भारत के अधिकांश कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी ग्रुपों-संगठनों के कमज़ोर विचारधारात्मक आधार, ग़लत सांगठनिक कार्यशैली और ग़लत कार्यक्रम पर अमल की आधी-अधूरी कोशिशों के लम्बे सिलसिले ने आज उन्हें इस मुक़ाम पर ला खड़ा किया है कि उनके सामने पार्टी के पुनर्गठन का नहीं, बल्कि नये सिरे से निर्माण का प्रश्न केन्द्रीय हो गया है। चीज़ें कभी अपनी जगह रुकी नहीं रहतीं। वे अपने विपरीत में बदल जाती हैं आज अव्वल तो विचारधारा और कार्यक्रम के विभिन्न प्रश्नों पर बहस-मुबाहसे से एकता क़ायम होने की स्थिति ही नहीं दिखती और यदि यह हो भी जाये तो एक सर्वभारतीय क्रान्तिकारी सर्वहारा पार्टी नहीं बन सकती क्योंकि कुल मिलाकर, घटक संगठनों-ग्रुपों के बोल्शेविक चरित्र पर ही सवाल उठ खड़ा हुआ है। आज भी क्रान्तिकारी क़तारों का सबसे बड़ा हिस्सा मा-ले ग्रुपों-संगठनों के तहत ही संगठित है। यानी क़तारों का कम्पोज़ीशन (संघटन) क्रान्तिकारी है, लेकिन नीतियों का कम्पोज़ीशन (संघटन) शुरू से ही ग़लत रहा है और अब उसमें विचारधारात्मक भटकाव गम्भीर हो चुका है। इन्हीं नीतियों के वाहक नेतृत्व का कम्पोज़ीशन ज़्यादातर संगठनों में आज अवसरवादी हो चुका है। इस नेतृत्व से 'पॉलिमिक्स' के ज़रिये एकता के रास्ते पार्टी-पुनर्गठन की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

भारतवर्ष में सर्वहारा क्रान्तिकारी की जो नयी पीढ़ी इस सच्चाई की आँखों में आँखें डालकर खड़ा होने का साहस जुटा सकेगी, वही नयी सर्वहारा क्रान्तियों के वाहक तथा नयी बोल्शेविक पार्टी के घटक बनने वाले क्रान्तिकारी केन्द्रों के निर्माण का काम हाथ में ले सकेगी। वही नया नेतृत्व क्रान्तिकारी क़तारों को एक नयी एकीकृत पार्टी के झण्डे तले संगठित करने में सफल हो सकेगा। इतिहास अपने को कभी हूबहू नहीं दुहराता और यह कि, सभी तुलनाएँ लंगड़ी होती हैं – इन सूत्रों को याद रखते हुए हम कहना चाहेंगे कि मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी फिर से खड़ी करने में हमें अपनी पहुँच-पद्धति तय करते हुए रूस में कम्युनिस्ट आन्दोलन के उस दौर से काफ़ी कुछ सीखना होगा, जो उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त और बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में गुज़रा था। बोल्शेविज़्म की स्पिरिट को बहाल करने का सवाल आज का सबसे महत्त्वपूर्ण सवाल है।

सर्वहारा के हरावल दस्ते के फिर से निर्माण की प्रक्रिया आज प्रारम्भिक अवस्था में है, लेकिन वह आगे डग भर चुकी है। इसी प्रक्रिया में, कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी जब मज़दूर वर्ग और अन्य मेहनतकश वर्गों के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार एवं आन्दोलन के कामों को हाथ में लेंगे तो मज़दूर वर्ग भी उस ताक़त को हासिल करना शुरू कर देगा कि जिसके बूते एक दिन वह आगे बढ़कर संसदीय वामपन्थी और अर्थवादी भाँड़ों-विदूषकों के हाथों से मई दिवस का परचम छीन लेगा तथा अपनी विरासत अपने क़ब्ज़े में ले लेगा।

मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी एकता ही आज मई दिवस का सन्देश हो सकता है। इस एकता के बारे में लेनिन के इस उद्धरण पर ग़ौर किया जाना चाहिए :

"मज़दूरों को एकता की ज़रूरत अवश्य है और इस बात को समझना महत्त्वपूर्ण है कि उन्हें छोड़कर और कोई भी उन्हें यह एकता "प्रदान" नहीं कर सकता, कोई भी एकता प्राप्त करने में उनकी सहायता नहीं कर सकता। एकता स्थापित करने का "वचन" नहीं दिया जा सकता – यह झूठा दम्भ होगा, आत्मप्रवंचना होगी(एकता बुद्धिजीवी ग्रुपों के बीच "समझौतों" द्वारा "पैदा" नहीं की जा सकती। ऐसा सोचना गहन रूप से दुखद, भोलापन भरा और अज्ञानता भरा भ्रम है।"

"एकता को लड़कर जीतना होगा, और उसे स्वयं मज़दूर ही, वर्गचेतन मज़दूर ही अपने दृढ़, अथक परिश्रम द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।"

"इससे ज़्यादा आसान दूसरी चीज़ नहीं हो सकती है कि "एकता" शब्द को गज-गज भर लम्बे अक्षरों में लिखा जाये, उसका वचन दिया जाये और अपने को "एकता" का पक्षधर घोषित किया जाये। परन्तु, वास्तव में, एकता आगे बढ़े हुए मज़दूरों के परिश्रम तथा संगठन द्वारा ही आगे बढ़ायी जा सकती है।"*('त्रुदोवायाप्राव्दा', अंक-2,30मई,1914)*

मई दिवस का आज एकमात्र यही सन्देश हो सकता है कि वर्ग-चेतन मज़दूरों को आगे बढ़कर, लड़कर, अपने परिश्रम से अपनी एकता हासिल करनी होगी और राजनीतिक संघर्षों के नये सिलसिले का सूत्रपात करना होगा। मज़दूर आन्दोलन को एक बार फिर क्रान्तिकारी राजनीतिक चेतना के एक नये युग में प्रवेश करना होगा और इक्कीसवीं सदी की नयी सर्वहारा क्रान्तियों की तैयारी में जुट जाना होगा।

"हमारी मौत दीवार पर लिखी ऐसी इबारत बन जायेगी जो नफ़रत, बैर, ढोंग-पाखण्ड, अदालत के हाथों होने वाली हत्या, अत्याचार और इन्सान के हाथों इन्सान की गुलामी के अन्त की भविष्यवाणी करेगी। दुनियाभर के दबे-कुचले लोग अपनी क़ानूनी बेड़ियों में कसमसा रहे हैं। विराट मज़दूर वर्ग जाग रहा है। गहरी नींद से जागी हुई जनता अपनी ज़ंजीरों को इस तरह तोड़ फेंकेगी जैसे तूफ़ान में नरकुल टूट जाते हैं।"

– अल्बर्ट पार्सन्स (शिकागो के शहीद मज़दूर नेता)

चुनावी नौटंकी का पटाक्षेप: अब सत्ता की कुत्ताघसीटी शुरू

(पेज 1 से आगे)

मायावती को प्रधानमंत्री बनाने की बातें कर रहे हैं, भ्रष्टाचार की अवतार और घोर जनविरोधी जयललिता और निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों के पोस्टरब्वॉय रहे चन्द्रबाबू नायडू से लेकर नवीन पटनायक तक को साथ लिये घूम रहे हैं जिसके मुख्यमंत्री रहते उड़ीसा के कन्धमाल में ईसाइयों का कत्लेआम किया गया। मज़दूर आन्दोलन के इन ग़द्दारों ने इस चुनाव के दौरान पतन के अपने ही सभी रिकार्ड तोड़ डाले हैं।

एक ओर सैकड़ों करोड़ रुपये खर्च करके मतदाताओं को वोट देने के लिए "जगाने" की कोशिशें इस बार चरम पर पहुँच गयीं, वहीं दूसरी ओर करोड़पति और अपराधी उम्मीदवारों की संख्या भी सारे रिकार्ड पार कर गयी। जिस देश में 77 प्रतिशत आबादी रोज़ाना सिर्फ 20 रुपये पर गुज़ारा करती हो वहाँ संसद की 542 सीटों के लिए अगर करोड़पति उम्मीदवारों की संख्या 1000 से ज़्यादा हो तो समझा जा सकता है कि ये किस "जन" के प्रतिनिधि हैं। अकेले मायावती की पार्टी ने उत्तर प्रदेश की 80 में से 24 सीटों पर माफ़िया सरगनाओं को टिकट दिया था। कांग्रेस, भाजपा, सपा सहित कोई पार्टी गुण्डों, हत्यारों, तस्करों और डकैतों को टिकट देने में पीछे नहीं थी।

डेढ़ महीने के चुनाव प्रचार में जनता के मुद्दे तो सिरे से नदारद थे, पर गाली-गलौच, ज़हरीला साम्प्रदायिक प्रचार, जातिवादी जोड़-तोड़, फिल्मी सितारों की भँड़ैती में कोई कमी नहीं थी। इस बार यह भी साफ़ हो गया कि आम मेहनतकश अवाम इस चुनावी पाखण्ड से पूरी तरह तंग आ चुका है और चुनाव के रास्ते अपने जीवन में बदलाव की उम्मीद छोड़ चुका है। यही वजह है कि मतदाता जागृति के घनघोर प्रचार अभियान के बावजूद देश के ज़्यादातर इलाकों में मतदान का प्रतिशत पिछली बार से भी कम ही रह गया। इससे झेंपे-बौखलाये चुनाव विश्लेषक सफाई दे रहे हैं कि "लोकतंत्र" में जनता की आस्था में कोई कमी नहीं आयी है, बस इस बार गर्मी ज़रा ज़्यादा हो गयी थी। जैसे अब तक के सारे चुनाव सुहाने मौसम में हुआ करते थे! अब कुछ लोग बेहयाई से कह रहे हैं कि 50 प्रतिशत ने ही वोट डाला तो क्या हुआ, जिन्होंने डाला वे धूप और गर्मी की परवाह न करके भी डटे रहे।

अब ज़रा उस "बहुमत" की असलियत भी देख ली जाये जिसके नाम पर पाँच साल तक लुटेरों का कोई गिरोह देश पर हुकूमत करेगा। इसका तो गणित ही एकदम आसान है। देश की करीब 115 करोड़ आबादी में से 71 करोड़ यानी करीब 61 प्रतिशत लोग ही वोटर हैं। शेष 54 करोड़ आबादी में सभी 18 वर्ष से कमउम्र नहीं हैं। इनमें कई करोड़ आबादी मेहनतकश जनता के सबसे निचले तबकों की है जिनके पास रहने का कोई स्थायी ठिकाना ही नहीं है। इन 71 करोड़ लोगों में से औसतन आधे यानी 36 करोड़ लोग वोट देते हैं। पड़ने वाले वोट में से 28 से 32 प्रतिशत वोट पाने वाली पार्टी या गठबन्धन सत्ता पर कब्जा कर लेता है। यानी हुकूमत करने वाले लोग देश की जनता के महज़ 9.5 से 10 प्रतिशत लोगों के ही प्रतिनिधि होते हैं। लेकिन बार-बार जनता को यह बताया जाता है कि लोकतंत्र का मतलब होता है बहुमत का शासन। जबकि असलियत यह है कि बहुमत ऐसे लोगों का होता है जो चुनाव जीतने वालों के ख़िलाफ़ थे।

बहरहाल, पूँजीवादी दुनिया के मालिकों का खेल-तमाशा तो ख़त्म हो गया लेकिन अब जनता को तय करना है कि वह इस घिनौनी नौटंकी को देखती और बर्दाश्त करती रहेगी, या इसे ध्वस्त कर एक ऐसा लोक स्वराज बनाने की राह पर आगे बढ़ेगी जिसमें उत्पादन, राजकाज और समाज के पूरे ढाँचे पर सच्चे अर्थों में मेहनतकश जनता का नियंत्रण होगा।

कार्ल मार्क्स के जन्मदिन (5 मई) के अवसर पर

कार्ल मार्क्स

फ़्रेडरिक एंगेल्स

फ़्रेडरिक एंगेल्स और कार्ल मार्क्स

...

विज्ञान के इतिहास में मार्क्स ने जिन महत्त्वपूर्ण बातों का पता लगाकर अपना नाम अमर किया है, उनमें से हम यहाँ दो का ही उल्लेख कर सकते हैं।

पहली तो विश्व इतिहास की सम्पूर्ण धारणा में ही वह क्रान्ति है, जो उन्होंने सम्पन्न की। इतिहास का पहले का पूरा दृष्टिकोण इस धारणा पर आधारित था कि सभी तरह के ऐतिहासिक परिवर्तनों का मूल कारण मनुष्यों के परिवर्तनशील विचारों में ही मिलेगा और सभी तरह के ऐतिहासिक परिवर्तनों में सबसे महत्त्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन ही हैं तथा सम्पूर्ण इतिहास में उन्हीं की प्रधानता है। लेकिन लोगों ने यह प्रश्न न किया था कि मनुष्य के दिमाग़ में ये विचार आते कहाँ से हैं और राजनीतिक परिवर्तनों की प्रेरक शक्तियाँ क्या हैं। केवल फ़्रांसीसी और कुछ-कुछ अंग्रेज़ इतिहासकारों की नवीनतर शाखा में यह विश्वास बरबस प्रविष्ट हुआ था कि कम से कम मध्ययुग से, सामाजिक और राजनीतिक प्रभुत्व के लिए उदीयमान पूँजीपति वर्ग का सामन्ती अभिजात वर्ग के साथ संघर्ष यूरोप के इतिहास की प्रेरक शक्ति रहा है। मार्क्स ने सिद्ध कर दिया कि अब तक का सारा इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास है, अब तक के सभी विविधरूपी और जटिल राजनीतिक संघर्षों की जड़ में केवल सामाजिक वर्गों के राजनीतिक और सामाजिक शासन की समस्या, पुराने वर्गों द्वारा अपना प्रभुत्व बनाये रखने तथा नये पनपते हुए वर्गों द्वारा इस प्रभुत्व को हस्तगत करने की समस्या ही रही है। लेकिन इन वर्गों के जन्म लेने और क़ायम रहने के कारण क्या हैं? इनका कारण वे शुद्ध भौतिक, गोचर परिस्थितियाँ हैं, जिनके अन्तर्गत समाज किसी भी युग में अपने जीवन-यापन के साधनों का उत्पादन और विनिमय करता है। मध्ययुग के सामन्ती शासन का आधार छोटे-छोटे कृषक समुदायों की स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था था, जो अपनी ज़रूरत की प्राय: सभी चीज़ों का स्वयं उत्पादन कर लेते थे। इनमें विनिमय का प्राय: पूर्ण अभाव था, शस्त्रधारी सामन्त बाहर के आक्रमणों से इनकी रक्षा करते थे, उन्हें जातीय या कम से कम राजनीतिक एकता प्रदान करते थे। नगरों के अभ्युदय के साथ अलग-अलग दस्तकारियों और परस्पर व्यापार का विकास हुआ जो पहले आन्तरिक क्षेत्र में सीमित था और आगे चलकर अन्तरराष्ट्रीय हो गया। इस सबके साथ नगर के पूँजीपति वर्ग का विकास हुआ और मध्यवर्ग में ही उसने सामन्तों से लड़-भिड़कर सामन्ती व्यवस्था के अन्दर एक विशेषाधिकार प्राप्त श्रेणी के रूप में अपने लिए स्थान बना लिया। परन्तु 15वीं शताब्दी के मध्य के बाद से, यूरोप के बाहर की दुनिया का पता लगने पर, इस पूँजीपति वर्ग को अपने व्यापार के लिए कहीं अधिक विस्तृत क्षेत्र मिल गया। इससे उसे अपने उद्योग-धन्धों के लिए नयी स्फूर्ति मिली। प्रमुख शाखाओं में दस्तकारी का स्थान मैनुफ़ेक्चर ने ले लिया जो अब फ़ैक्टरियों के पैमाने पर स्थापित था। फिर इसकी जगह बड़े पैमाने के उद्योग ने ले ली जो पिछली सदी के आविष्कारों, ख़ासकर भाप से चलनेवाले इंजन के आविष्कार से सम्भव हो गया था। बड़े पैमाने के उद्योग का व्यापार पर यह प्रभाव पड़ा कि पिछड़े हुए देशों में पुराना हाथ का काम ठप हो गया और उन्नत देशों में उसने संचार के आधुनिक नये साधन – भाप से चलने वाले जहाज़, रेल, वैद्युतिक तार – उत्पन्न किये। इस प्रकार पूँजीपति वर्ग सामाजिक सम्पत्ति और सामाजिक शक्ति दोनों को अधिकाधिक अपने हाथों में केन्द्रित करने लगा, यद्यपि काफ़ी अरसे तक राजनीतिक सत्ता से वह वंचित रहा जो सामन्तों और उनके द्वारा समर्थित राजतन्त्र के हाथ में थी। लेकिन विकास की एक मंज़िल ऐसी आयी – फ़्रांस में महान क्रान्ति के बाद – जब उसने राजनीतिक सत्ता को भी हथिया लिया, और तब वे वह सर्वहारा वर्ग और छोटे किसानों के ऊपर शासन करनेवाला वर्ग बन गया। इस दृष्टिकोण से, समाज की विशेष आर्थिक स्थिति का सम्यक ज्ञान होने से सथी ऐतिहासिक घटनाओं की बड़ी सरलता से व्याख्या की जा सकती है, यद्यपि यह सही है कि हमारे पेशेवर इतिहासकारों में इस ज्ञान का सर्वथा अभव है। इसी प्रकार हर ऐतिहासिक युग की धारणाओं और उसके विचारों की व्याख्या बड़ी सरलता से, उस युग की आर्थिक जीवनावस्थाओं और सामाजिक तथा राजनीतिक सम्बन्धों के आधार पर (ये सम्बन्ध भी आर्थिक परिस्थितियों द्वारा ही निर्धारित होते हैं) की जा सकती है। इतिहास को पहली बार अपना वास्तविक आधार मिला। यह आधार एक बहुत ही स्पष्ट सत्य है जिसकी ओर पहले लोगों का ध्यान बिल्कुल नहीं गया था, यानी यह सत्य कि मनुष्यों को सबसे पहले खाना-पीना, ओढ़ना-पहनना और सिर के ऊपर साया चाहिए, इसलिए पहले उन्हें लाज़िमी तोर पर **काम करना** होता है, जिसके बाद ही वे प्रभुत्व के लिए एक-दूसरे से झगड़ सकते हैं, और राजनीति, धर्म, दर्शन, आदि को अपना समय दे सकते हैं। आख़िरकार इस स्पष्ट सत्य को अपना ऐतिहासिक अधिकार प्राप्त हुआ।

समाजवादी दृष्टिकोण के लिए इतिहास की यह नयी धारणा सर्वोच्च महत्त्व की थी। इससे पता लगा कि पहले के सम्पूर्ण इतिहास की गति वर्ग-विरोधों और वर्ग-संघर्षों के बीच में रही है, कि शासक और शासित, शोषक और शोषित वर्गों का अस्तित्व बराबर रहा है और यह कि मानव-जाति के अधिकांश भाग के पल्ले सदा से कड़ी मशक़्क़त पड़ी है, आनन्दोपभोग बहुत कम। ऐसा क्यों हुआ? इसीलिए कि मानव-जाति के विकास की सभी पिछली मंज़िलों में उत्पादन का विकास इतना कम हुआ था कि ऐतिहासिक विकास इस अन्तरविरोधी रूप में ही हो सकता था, ऐतिहासिक प्रगति कुल मिलाकर एक विशेषाधिकार प्राप्त अल्पसंख्यक समुदाय के क्रियाकलाप का ही विषय बना दी गयी थी, और बहुसंख्यकों के भाग्य में अपने श्रम द्वारा जीवन-निर्वाह के अपने स्वल्प साधन और इसके अतिरिक्त विशेषाधिकार सम्पन्न समुदाय के लिए अधिकाधिक प्रचुर साधन उत्पादित करना रह गया था। परन्तु इतिहास की यही जाँच-पड़ताल, जो हमें इस प्रकार पहले के वर्ग शासन की स्वाभाविक एवं बुद्धिसम्मत व्याख्या प्रदान करती है (अन्यथा हम मानव-स्वभाव की दुष्टता द्वारा ही उसकी व्याख्या कर सकते थे), साथ ही साथ हमें यह बोध कराती है कि वर्तमान युग में उत्पादक शक्तियों के अति प्रचण्ड विकास के कारण मानव-जाति को शासक और शासित, शोषक और शोषित में बाँट रखने का अन्तिम बहाना भी, कम से कम सबसे उन्नत देशों में, मिट चुका है; कि शासक बड़े पूँजीपति अपनी ऐतिहासिक भूमिका समाप्त कर चुके हैं, और जैसा कि व्यापारिक संकटों, और ख़ासकर पिछली भयानक गिरावट और सभी देशों में फैली मन्दी से सिद्ध हो चुका है, वे समाज का नेतृत्व करने के योग्य अब नहीं रह गये हैं, बल्कि उत्पादन के विकास में बाधक बन गये हैं; कि ऐतिहासिक नेतृत्व सर्वहारा वर्ग के हाथ में चला गया है, ऐसे वर्ग के हाथ में चला गया है जो समाज में अपनी समग्र स्थिति के कारण सम्पूर्ण वर्ग शासन, सम्पूर्ण दासता एवं सम्पूर्ण शोषण का अन्त करके ही अपने को मुक्त कर सकता है; और यह कि सामाजिक उत्पादक शक्तियाँ, जो इतनी विकसित हो गयी हैं कि पूँजीपति वर्ग के क़ाबू से बाहर हैं, बस इस प्रतीक्षा में हैं कि एकजुट सर्वहारा उन्हें अपने हाथों में ले ले जिससे कि ऐसी अवस्था क़ायम की जा सके जिसमें समाज का प्रत्येक सदस्य न केवल सामाजिक सम्पदा के उत्पादन में, बल्कि वितरण और प्रबन्ध में भी हाथ बँटा सकेगा, और जो अवस्था सम्पूर्ण उत्पादन के नियोजित संचालन द्वारा सामाजिक उत्पादक शक्तियों और उनकी उपज को इतना बढ़ा देगी कि प्रत्येक व्यक्ति की सभी उचित आवश्यकताओं की उत्तरोत्तर बढ़ती मात्रा में पूर्ति सुनिश्चित हो जायेगी।

मार्क्स ने जिस दूसरी महत्त्वपूर्ण बात का पता लगाया है, वह पूँजी और श्रम के सम्बन्ध का निश्चित स्पष्टीकरण है। दूसरे शब्दों में, उन्होंने यह दिखाया कि वर्तमान समाज में और उत्पादन की मौजूदा पूँजीवादी प्रणाली के अन्तर्गत किस तरह पूँजीपति मज़दूर का शोषण करता है। जब से राजनीतिक अर्थशास्त्र ने यह प्रस्थापना प्रस्तुत की कि समस्त सम्पदा और समस्त मूल्य का मूल स्रोत श्रम ही है, तभी से यह प्रश्न भी अनिवार्य रूप से सामने आया कि इस बात से हम इस तथ्य का मेल कैसे बैठायें कि उजरती मज़दूर अपने श्रम से जिस मूल्य को उत्पन्न करता है, वह पूरा का पूरा उसे नहीं मिलता, वरन उसका एक अंश उसे पूँजीपति को दे देना पड़ता है? पूँजीवादी और समाजवादी, दोनों ही तरह के अर्थशास्त्रियों ने इस प्रश्न का ऐसा उत्तर देने का प्रयत्न किया, जो वैज्ञानिक दृष्टि से संगत हो, परन्तु वे विफल रहे। अन्त में मार्क्स ने ही उसका सही उत्तर दिया। वह उत्तर इस प्रकार है : उत्पादन की वर्तमान पूँजीवादी प्रणाली में समाज के दो वर्ग हैं – एक ओर पूँजीपतियों का वर्ग है, जिसके हाथ में उत्पादन और जीवन-निर्वाह के साधन हैं, दूसरी ओर सर्वहारा वर्ग है, जिसके पास इन साधनों से वंचित रहने के कारण बेचने के लिए केवल एक माल – अपनी श्रम-शक्ति – ही है और इसलिए जो जीवन-निर्वाह के साधन प्राप्त करने के लिए अपनी इस श्रम-शक्ति को बेचने के लिए मजबूर है। परन्तु किसी माल का मूल्य उसके उत्पादन में, और इसीलिए उसके पुनरुत्पादन में भी, लगी सामाजिक दृष्टि से आवश्यक श्रम की मात्रा से निर्धारित होता है। अत: एक औसत मनुष्य की एक दिन, एक महीना या एक वर्ष की श्रम-शक्ति का मूल्य इस श्रम-शक्ति को एक दिन, एक महीना या एक वर्ष तक क़ायम रखने के लिए आवश्यक जीवन-निर्वाह के साधनों में लगे श्रम की मात्रा से निर्धारित होता है। मान लीजिये कि किसी मज़दूर को एक दिन के जीवन-निर्वाह के साधनों के उत्पादन के लिए छ: घण्टे का श्रम चाहिए, या उसी बात को यों कहें कि उनमें लगा श्रम छ: घण्टे के श्रम की मात्रा के बराबर है, तो श्रम-शक्ति का एक दिन का मूल्य ऐसी रक़म में व्यक्त होगा जिसमें भी छ: घण्टे का श्रम लगा हो। अब यह भी मान लीजिये कि इस मज़दूर को काम पर लगानेवाला पूँजीपति उसे बदले में यह रक़म देता है, और इसलिए उसकी श्रम-शक्ति का पूरा मूल्य उसे अदा करता है। अब अगर मज़दूर दिन में छ: घण्टे पूँजीपति के लिए काम करता है तो वह पूँजीपति की पूरी लागत को चुकता कर देता है – छ: घण्टे के श्रम के बदले छ: घण्टे का श्रम देता है। पर ऐसी हालत में पूँजीपति के लिए कुछ नहीं रहता, और इसलिए वह तो इसे बिल्कुल दूसरे ही ढंग से देखता है। वह कहता है : मैंने इस मज़दूर की श्रम-शक्ति छ: घण्टे के लिए नहीं बल्कि पूरे दिन के लिए ख़रीदी है, और इसलिए वह मज़दूर से 8, 10, 12, 14 या इससे भी अधिक घण्टों की उपज अशोधित श्रम की, ऐसी श्रम की जिसका भुगतान नहीं किया गया होता, उपज होती है, और यह सीधे पूँजीपति की जेब में पहुँच जाती है। इस तरह पूँजीपति की नौकरी करनेवाला मज़दूर केवल उस श्रम-शक्ति का मूल्य ही नहीं पुनरुत्पादित करता जिसके लिए उसे मज़दूरी मिलती है, बल्कि इसके अलावा वह **अतिरिक्त मूल्य** भी पैदा करता है जिसे पहले पूँजीपति हस्तगत करता है और जो बाद में निश्चित आर्थिक नियमों के अनुसार समूचे पूँजीपति वर्ग के बीच वितरित होता है। यह अतिरिक्त मूल्य वह मूल कोष होता है जिससे लगान, मुनाफ़ा, पूँजी का संचय बनता है – संक्षेप में वह सारी दौलत बनती है जिसका ग़ैर-मेहनतकश वर्ग उपभोग अथवा संचय करते हैं। इससे यह सिद्ध हो गया कि आज के पूँजीपतियों द्वारा धन संचय उसी प्रकार दूसरों के अशोधित श्रम का हस्तगतकरण है जिस प्रकार दास-स्वामियों या भू-दास श्रम का शोषण करनेवाले सामन्ती प्रभुओं का धन-संचय था, और शोषण के इन सभी रूपों में अन्तर केवल अशोधित श्रम के हस्तगतकरण के तरीक़े और ढंग का ही है। पर इस बात ने सम्पत्तिधारी वर्गों के ढोंग से भरे शब्दजाल का अन्तिम औचित्य भी समाप्त कर दिया, जिसका आशय यह होता था कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में क़ानून और न्याय, अधिकारों और कर्तव्यों की समानता तथा हितों के सामंजस्य का बोलबाला है, और यह प्रकट कर दिया कि वर्तमान पूँजीवादी समाज, अपने पूर्ववर्ती समाजों की ही भाँति और उनसे किसी भी तरह कम नहीं, जनता की विशाल की बहुसंख्या के निरन्तर घटते ही जाते अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा शोषण की एक भीमकाय संस्था मात्र है।

एंगेल्स द्वारा जून, 1877 के मध्य में लिखित लेख का अंश। *«Volks-Kalender»* नामक वार्षिकी में, जो ब्रुंसविक में 1878 में निकली थी, प्रकाशित।

चीनी विशेषता वाले "समाजवाद" में मज़दूरों के स्वास्थ्य की दुर्गति

माओ त्से-तुङ और कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में हुई चीनी क्रान्ति के बाद जिस मेहनतकश वर्ग ने अपना ख़ून-पसीना एक करके समाजवाद का निर्माण किया था, कल-कारख़ाने, सामूहिक खेती, स्कूल, अस्पतालों को बनाया था, वह 1976 में माओ के देहान्त के बाद 1980 में शुरू हुए देङपन्थी "सुधारों" के चलते अब बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं तक से महरूम है। जिस चीन में समाजवाद के दौर में सुदूर पहाड़ी इलाक़ों से लेकर शहरी मज़दूरों तक, सबको मुफ़्त चिकित्सा उपलब्ध थी, वहाँ अब दवाओं के साथ-साथ परीक्षणों की क़ीमत और डॉक्टरों की फ़ीस आसमान छू रही है। आम मेहनतकश जनता अब दिन रात खटने के बाद, पोषक आहार न मिल पाने से या पेशागत कारणों से बीमार पड़ती है तो उसका इलाज तक नहीं हो पाता और वह तिल-तिलकर मरने को मजबूर होती है।

क्रान्तिकारी चीन में स्वास्थ्य की स्थिति

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में 1949 में सर्वहारा वर्ग सत्ता पर काबिज़ हुआ तो उसने मेहनतकश जनता के लिए, जोकि अधिकांशत: ग्रामीण इलाकों में रहती थी, स्वास्थ्य सेवाओं का एक तन्त्र विकसित किया था। सभी अस्पतालों का स्वामित्व, फ़ण्डिंग और संचालन सरकार की ज़िम्मेदारी थी और निजी तौर पर स्वास्थ्य सेवाएँ देने का चलन बन्द हो गया। ग्रामीण इलाकों में कम्यून ही स्वास्थ्य सेवाओं सहित अन्य सामाजिक सेवाओं की आपूर्ति भी करते थे। अधिकांश स्वास्थ्य सेवाएँ सहकारी चिकित्सा तन्त्र के जरिए उपलब्ध करायी जाती थीं, जो गाँवों और शहरों के स्वास्थ्य केन्द्रों के माध्यम से ये सेवाएँ प्रदान करता था। इन स्वास्थ्य केन्द्रों का दायित्व पश्चिमी और पारम्परिक चीनी उपचार के लिए बुनियादी प्रशिक्षण प्राप्त बेयरफुट डॉक्टर सँभालते थे। इन सब प्रयासों का परिणाम आश्चर्यजनक था। 1952 से 1982 तक, शिशु मृत्यु दर प्रति एक हज़ार पर 200 से घटकर 34 रह गयी थी और औसत आयु 35 से बढ़कर 68 वर्ष हो गयी थी। (बेयरफुट यानी नंगे पाँव वाले डॉक्टर चीन का एक अद्भुत प्रयोग था। इसके तहत हज़ारों लोगों को इलाज का बुनियादी प्रशिक्षण देकर गाँवों और शहरों में भेजा गया थां आम तौर पर होनेवाली बीमीरियों के इलाज के साथ-साथ वे लोगों को स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारियाँ भी देते थे।)

संशोधनवादियों के सत्ता पर काबिज़ होने के बाद 1980 के आरम्भ में, चीन की अर्थव्यवस्था के विकेन्द्रीकरण और निजीकरण के कारण उसका स्वास्थ्य सेवा तन्त्र चरमरा गया क्योंकि अब उत्पादन, राज-काज और वितरण सर्वहारा वर्ग के बजाय पूँजीपति वर्ग के हाथों में आ गया था। अब संशोधनवादी सरकार ने स्वास्थ्य सेवाओं में ख़र्च को 1978 के 32 प्रतिशत की तुलना में घटाकर 1999 में 15 प्रतिशत कर दिया और यह ज़िम्मेदारी प्रान्तीय और स्थानीय अधिकारियों के सिर मढ़ दी। इससे, सम्पन्न तटीय प्रान्तों को लाभ हुआ और शहरी तथा ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं में अन्तर बढ़ गया। निजीकरण के बाद स्वास्थ्य सेवाएँ अपने ख़र्चों की भरपाई के लिए निजी बाज़ार में सेवाएँ बेचने के लिए बाध्य हो गयीं।

हालाँकि, कम्युनिस्ट होने का दिखावा करने के लिए संशोधनवादी सरकार ने नियमित चिकित्सकीय मुलाक़ात और ऑपरेशनों, सामान्य नैदानिक परीक्षणों और नियमित दवाओं की क़ीमतों पर नियन्त्रण बनाये रखा। फिर भी, स्वास्थ्य केन्द्र नयी दवाओं और परीक्षणों से मुनाफ़ा कमा सकते थे। बेहद मुनाफ़ा देने वाली नयी दवाओं और तकनोलॉजियों के जरिए राजस्व बटोरने पर अस्पतालों के चिकित्सकों को बोनस दिया जाने लगा। स्वास्थ्य सेवाओं की क़ीमतों में बढ़ोत्तरी से महँगी दवाओं और उच्च तकनीकी सेवाओं की बिक्री में बेतहाशा बढ़ोत्तरी हुई। इन सब कारणों से चीन की आम जनता के लिए स्वास्थ्य सेवाएँ हासिल करना मुश्किल हो गया। इसका कारण यह भी था कि कृषि अर्थव्यवस्था के निजीकरण के कारण 90 करोड़ ग़रीब ग्रामीण जनता अब असुरक्षित हो गयी है और उसका चिकित्सा बीमा नहीं है। बेयरफुट डॉक्टर निजी स्तर पर स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान करने को मजबूर हो गए। उन्होंने तनख़्वाहों और सुविधाओं में कटौती के कारण सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाएँ देना बन्द कर दिया, और दवाएँ बेचना शुरू कर दिया जिसके ज़रिये अपनी बुनियादी जरूरतें पूरा करना आसान था। इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में भी दवाओं की क़ीमतों में तेज़ी से वृद्धि हुई।

अर्थव्यवस्था के साथ ही सार्वजनिक स्वास्थ्य तन्त्र के निजीकरण के बाद केन्द्र सरकार ने स्थानीय सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं के कोष में कटौती कर दी। इसकी भरपायी के लिए स्थानीय सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं को यह छूट दी गयी कि वे व्यक्तिगत स्वास्थ्य सेवाओं और होटलों तथा रेस्टोरेण्ट आदि में स्वच्छता के निरीक्षण आदि का शुल्क वसूल कर आमदनी जुटायें। इसके साथ ही स्थानीय स्वास्थ्य अधिकारियों ने आमदनी बढ़ाने वाली गतिविधियों पर ध्यान केंद्रित कर दिया और स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता-शिक्षा, माँओं और बच्चों के स्वास्थ्य तथा महामारियों पर नियन्त्रण की उपेक्षा करना शुरू कर दिया।

जैसाकि होना था, 'बाज़ार समाजवाद' की नीतियों के कारण गाँव-शहर, अमीर-ग़रीब, शारीरिक श्रम-मानसिक श्रम के बीच की खाई निरन्तर चौड़ी होती गयी। आय में असमानता के कारण शहरी मध्यवर्ग और अन्य खाते-पीते तबके के बीच स्वास्थ्य सेवाओं की खपत ग्रामीण जनता की तुलना में तीन गुना ज़्यादा हो गयी। 1999 में, चीन की 49 प्रतिशत शहरी जनता के पास स्वास्थ्य बीमा था, जबकि ग्रामीण जनता में केवल 7 प्रतिशत को ही यह सुविधा उपलब्ध थी। ये 7 प्रतिशत भी ज़्यादातर नये उभरे धनी किसान और खाते-पीते किसान थे।

असन्तोष को रोकने के सरकारी "प्रयास"

अपनी ही नीतियों के कारण बढ़ती बेरोज़गारी, ग़रीबी को लेकर चीन के नये पूँजीवादी शासक परेशान होने लगे हैं क्योंकि जगह-जगह मज़दूरों के बीच से असन्तोष और आन्दोलन उभरने लगे हैं। स्वास्थ्य सेवाओं के निजीकरण के बाद ग़रीब जनता में फैलते गुस्से को भाँपकर उन्होंने पिछले कुछ समय में इसमें से कुछ सुधार करने की कोशिश की हैं। रोज़गारदाता की ओर से वित्तपोषित आपातस्थिति बीमा, और चिकित्सा बचत खाता अनिवार्य कर दिया गया है, जिसमें लोगों को अपने चिकित्सा व्यय के कुछ हिस्से के लिए पैसा जमा करना पड़ता है। चिकित्सा बचत खातों से स्वास्थ्य सेवा के लिए कर्मचारी के वार्षिक वेतन के 10 प्रतिशत तक का भुगतान किया जाता है, जिसके बाद आपातस्थिति योजना लागू होती है।

लेकिन कुछ नियोक्ता यह कहकर इसे मानने से इन्कार कर देते हैं कि वे अपने अंशदान का ख़र्च उठा सकते। हक़ीक़त यह भी है कि अधिकांश शहरी आबादी संगठित क्षेत्र में काम नहीं करती है। मज़दूरों को लाभ देने से बचने के लिए आये दिन कम्पनी बनायी जाती है और बन्द की जाती है, फिर उसे दूसरे नाम से चालू कर दिया जाता है। यही नहीं, मज़दूरों पर निर्भर उनके परिवार के सदस्य इन योजनाओं के अन्तर्गत नहीं आते। चीन का निजी स्वास्थ्य बीमा उद्योग मुट्ठीभर धनिकों का ही बीमा करता है जो इसका ख़र्च उठा सकते हैं, उस पर तुर्रा यह कि स्वास्थ्य बीमा के क्षेत्र में भी विदेशी कंपनियों को न्यौता देने की योजना पर विचार किया जा रहा है।

यह तय है कि चीन की संशोधनवादी सरकार बढ़ती बेरोज़गारी, ख़राब स्वास्थ्य, अशिक्षा, आवास न होने आदि से बढ़ते असन्तोष को कम करने के लिए जितनी भी बन्दरकूद कर ले, अब न तो उसकी इच्छा है और न ही उसके बस में है कि बोतल से निकले इस पूँजीवादी जिन्न को वह कैद कर सके। अब मुनाफ़ा रूपी पूँजीवादी जिन्न चीन में तबाही-बदहाली को लगातार बढ़ायेगा और इस तरह खुद अपनी क़ब्र खोदने वालों को ही तैयार करेगा। चीन से आ रही छिटपुट ख़बरों से यह पता चलता है कि वहाँ की जनता अब माओकालीन समाजवादी चीन की उपलब्धियों को दोबारा याद करने लगी है और चीनी विशेषता वाले समाजवाद के इस छलावे को समझने लगी है।

– सन्दीप

जापान में बेरोज़गार मज़दूरों को गाँव भेजने की कोशिश

बढ़ती बेरोज़गारी से घबरायी कई देशों की सरकारों ने अपनाया यह हथकण्डा

विश्व-व्यापी मन्दी के भँवर में फँसा जापान भी हाथ-पाँव मार रहा है। लगातार चौपट होती अर्थव्यवस्था को तरह-तरह के पैकेजों व स्कीमों के ज़रिये बचाने की असफल कोशिशें वहाँ भी चल रही हैं। ऐसी ही एक नयी कोशिश का नाम है प्रोत्साहन पैकेज।

मन्दी ने शहरी उद्योगों में लगे जिन जापानी नौजवानों और मज़दूरों के रोज़गारों को लील लिया है उन्हें खेती करने या बड़े किसानों के यहाँ मज़दूरी करने के लिए गाँवों की ओर रवाना किया जा रहा है। कहा जा रहा है कि इस तरह उन्हें ग्रामीण अर्थव्यवस्था में समायोजित कर लिया जायेगा। यह जापानी प्रधानमन्त्री तारो आसो का तथाकथित प्रोत्साहन पैकेज है जिसके तहत पहली खेप में ऐसे 2400 शहरी बेरोज़गारों और अर्द्धबेरोज़गारों को 'ग्रामीण श्रम दस्ता' में शामिल किया गया है। कुछ दिनों का प्रशिक्षण देकर इन्हें खेतों में काम करने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। सच तो यह है कि इन्हें प्रोत्साहन की ज़रूरत ही नहीं। पूँजीवाद के संकट ने इन्हें पहले से ही रोज़ी-रोटी की चाहत में दर-दर भटकने को मजबूर कर दिया है।

जापानी सरकार भले ही अपनी पीठ ठोके कि उसने शहर की फ़ाज़िल श्रम शक्ति को कृषि की ज़रूरतों के लिए उपलब्ध कराकर आर्थिक ढाँचे को नियोजित करने की कोशिश की है, लेकिन इसकी कलई तो योजना के शुरू होते ही खुलने लगी है। हज़ारों की संख्या में छात्रों, नौजवानों, मज़दूरों के इस दस्ते में शामिल होने के सरकार के तमाम दावों के बावजूद खुद उसके ही एक मन्त्री का कहना था कि कृषि क्षेत्र रोज़गार के पर्याप्त अवसर मुहैया नहीं करा सकता। अत: देश में बेरोज़गारी की समस्या से निपटने के लिए कृषि से आस लगाना वास्तविकता से मुँह चुराना होगा।

दूसरे, वहाँ धान की खेती में लाभकारी मूल्य में कमी आने के चलते छोटे किसान तो वैसे ही तबाह हो रहे हैं और आजीविका कमाने के दूसरे उपाय अपनाने को मजबूर हो रहे हैं। केवल कुछ बड़े किसान इन नौजवानों को नौकरी पर रखते हैं वह भी जापान के जीवन स्तर के मुक़ाबले काफ़ी कम मज़दूरी पर। इसके अतिरिक्त कृषि का काम लगातार नहीं होता। केवल सालभर में कुछ दिनों के लिए जब बोवाई या कटाई होती है तभी इनकी ज़रूरत पड़ती है। साथ ही, कुछ ऐसे शहरी नौजवान जो शहर की अपनी नौकरी की अनिश्चितता के चलते स्वेच्छा से गाँव में बसना और खेती करना चाहते हैं उन्हें स्थानीय ग्रामीण समुदाय का विरोध सहना पड़ता है।

हक़ीक़त तो यह है कि जापान की ग्रामीण अर्थव्यवस्था जापानी उद्योग के मुक़ाबले पिछड़ी हुई है। पूँजीवाद में उद्योग के मुक़ाबले खेती हमेशा ही पिछड़ी होती है। वह स्थानीय लोगों को ही जीविका कमाने के अवसर मुहैया नहीं करा पा रही है और फाजिल श्रमशक्ति की मौजूदगी वहाँ पहले से ही बनी हुई है फिर शहरी बेरोज़गारों को भला वह किस प्रकार समायोजित करेगी!

पूँजीवाद के इस संकट से उबरने के लिए जापान ही नहीं बल्कि भारत, चीन और ब्राजील सहित कुछ लैटिन अमेरिकी देशों में बेरोज़गारी के दबाव को कम करने के लिए सरकारें इसी क़िस्म की योजनाएँ लागू कर रही हैं। चीन में समाजवाद के दौर की नियोजित अर्थव्यवस्था के ढाँचे का फ़ायदा उठा कर चीन के नये पूँजीवादी शासक एक हद तक ऐसा करने में कामयाब हुए हैं।

हिन्दुस्तान में राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारण्टी योजना के पीछे एक अहम मकसद यह है कि रोज़ी-रोटी की तलाश में शहरों की ओर भाग रही ग्रामीण आबादी को औद्योगिक बेरोज़गारों की भीड़ में शामिल होने और शहर में दबाव बढ़ाने से रोका जा सके। मज़दूरी की दर कम बनाये रखने के लिए पूँजीपतियों को जिस हद तक बेरोज़गारों की फ़ौज चाहिए, वह तो शहरों में पहले से मौजूद है। इससे ज़्यादा भीड़ बढ़ेगी तो सामाजिक असन्तोष भड़कने का ख़तरा पैदा हो जायेगा। लेकिन इस पूँजीवादी तन्त्र का अपना संकट यह है कि नीचे तक फैले भ्रष्टाचार के कारण नरेगा जैसी योजनाएँ ग्रामीण मज़दूरों के बीच भी असन्तोष को बढ़ाने का ही काम कर रही हैं।

लगातार फैलती विश्वव्यापी मन्दी के कारण बढ़ती बेरोज़गारी को कम करने के लिए पूँजीवाद के सिपहसालारों के पास कोई उपाय नहीं है। पूँजीपतियों को अरबों डॉलर के पैकेज देने के बाद भी अर्थव्यवस्था में तेज़ी नहीं आ पा रही है। गोदाम मालों से भरे पड़े हैं और लोगों के पास उन्हें ख़रीदने के लिए पैसे नहीं हैं। लगातार छँटनी, बेरोज़गारी और तनख़्वाहों में कटौती के कारण हालत और बिगड़ने ही वाली है। ऐसे में शहरों में बेरोज़गारों की बढ़ती फ़ौज से घबरायी पूँजीवादी सरकारें तरह-तरह के उपाय कर रही हैं, लेकिन इस तरह की पैबन्दसाज़ी से कुछ होने वाला नहीं है। पूँजीवादी नीतियों के कारण खेती पहले ही संकटग्रस्त है, ऐसे में शहरी बेरोज़गारों को गाँव भेजने या ग्रामीण बेरोज़गारों को वहीं रोककर रखने की उनकी कोशिशें ज़्यादा कामयाब नहीं हो सकेंगी। लेकिन, अगर क्रान्तिकारी शक्तियाँ सही सोच और समझ के साथ काम करें तो ये ही कार्यक्रम ग्रामीण मेहनतकश आबादी को संगठित करने का एक ज़रिया बन सकते हैं।

– मीनाक्षी

नताशा – एक महिला बोल्शेविक संगठनकर्ता

एक संक्षिप्त जीवनी (पाँचवीं क़िश्त)

एल. काताशेवा

रूस की अक्टूबर क्रान्ति के लिए मज़दूरों को संगठित, शिक्षित और प्रशिक्षित करने के लिए हज़ारों बोल्शेविक कार्यकर्ताओं ने बरसों तक बेहद कठिन हालात में, ज़बरदस्त क़ुर्बानियों से भरा जीवन जीते हुए काम किया। उनमें बहुत बड़ी संख्या में महिला बोल्शेविक कार्यकर्ता भी थीं। ऐसी ही एक बोल्शेविक मज़दूर संगठनकर्ता थीं नताशा समोइलोवा जो आख़िरी साँस तक मज़दूरों के बीच काम करती रहीं। हम 'बिगुल' के पाठकों के लिए उनकी एक संक्षिप्त जीवनी का धारावाहिक प्रकाशन कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि आम मज़दूरों और मज़दूर कार्यकर्ताओं को इससे बहुत कुछ सीखने को मिलेगा। – सम्पादक

पुलिस बहुत परेशान थी, "एक बार फिर उनसे देर हो गयी!" पुलिस की घेराबन्दी के बावजूद प्रसन्न और उत्साह से भरी भीड़ लगातार बढ़ती गयी। कलाश्निकोव एक्सचेंज के हॉल में भीड़ समा न सकी।

'प्रावदा' ने उस दिन एक विशेष संस्करण छापा, जिसकी सामग्री अत्यन्त क्रान्तिकारी थी।

उसने अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस पर स्त्री मज़दूरों का स्वागत किया और जुझारू सर्वहारा की क़तारों से जुड़ने के लिए उन्हें बधाई दी। उसने इस दिन को एक प्रतीक के रूप में चिह्नित किया जब स्त्री मज़दूर उठकर समूचे मेहनतकश वर्ग के आम आन्दोलन के स्तर पर पहुँच गयी थीं। उसने घोषणा की कि स्त्री मज़दूरों ने उसके आह्वान पर उत्साहपूर्वक अमल किया। इस यादगार बैठक में बोलने वाले नये वक्ताओं ने उन पर किये गये काम और उनसे लगायी गयी उम्मीदों को सही साबित किया।

'प्रावदा' ने लिखा :

"श्रोताओं को स्त्री मज़दूरों के वर्ग की एक मुग्ध कर देने वाली तस्वीर देखने को मिली, ऐसी स्त्रियाँ जो आधुनिक समाज में सभी अधिकारों से वंचित थीं। इसी के साथ वक्ताओं ने, इस बात पर ज़ोर देते हुए कि इस आन्दोलन से आम सर्वहारा का मोर्चा बिखरना नहीं चाहिए बल्कि और मज़बूत होना चाहिए, स्पष्ट शब्दों में अपनी बात रखते हुए मज़दूर वर्ग की स्त्रियों के आन्दोलन और पूँजीवादी स्त्री संगठनों के हितों और कामों के बीच तीखे अन्तर पर, और मज़दूर वर्ग की स्त्रियों के आन्दोलन के समूचे मज़दूर वर्ग के हितों और कार्यों के साथ नज़दीकी जुड़ाव पर अत्यधिक बल दिया। अगर मज़दूर आन्दोलन प्रचण्ड वेग वाली नदी है तो स्त्री आन्दोलन उसकी ताक़त को सशक्त और समृद्ध करने वाली एक सहायक नदी है।"

कलाश्निकोव एक्सचेंज पर हुई बैठक के अलावा "साइण्टिफ़िक मैटिनि" के आयोजन बोल्शेविक संगठनों द्वारा नियन्त्रित क्लबों और दूसरी समितियों में भी हुए।

'प्रावदा' ने सिलसिलेवार कई अंकों में पहले अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस के आयोजन के तौर-तरीक़ों के ब्योरे छापे। भाषणों के सारांश और वक्ताओं के नाम दिये गये ताकि सभी कामकाजी महिलाएँ उनको जान सकें क्योंकि वे नये काडर थे जिन्होंने पहली बार दुनिया के सामने घोषणा की कि रूसी स्त्री मज़दूर दमन और दमनकारियों के ख़िलाफ़ संघर्ष करने वालों की तरफ़ दोस्ती का हाथ बढ़ा रही हैं।

यह आह्वान सुना गया। अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस के आयोजन ने मेहनतकश स्त्रियों की ओर से ज़बरदस्त समर्थन प्राप्त किया। 'प्रावदा' ने टेलीफ़ोन ऑपरेटरों, घरेलू नौकरों, अस्पतालों के मज़दूरों, धोबिनों की टेलीफ़ोन वार्ताएँ प्रकाशित कीं। उसने पहले अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस के आयोजन पर विभिन्न शहरों से आये शुभकामना सन्देश छापे।

मेहनतकश वर्ग को एकजुट करने, और उसे क्रान्तिकारी सेनाओं के उभार के रूप में संगठित करने का सबसे बड़ा काम था सर्वहारा की क्रान्तिकारी माँगों के अनुकरण और अशिष्टीकरण के ख़िलाफ़ लेनिनवादी दर्शन की लड़ाई।

समोइलोवा ने विभिन्न सवालों पर 'प्रावदा' में सिलसिलेवार कई लेख लिखे। वह विवादों में भी पड़ीं लेकिन उनके तीरों का निशाना हमेशा मेंशेविकों का अख़बार 'लुच' हुआ करता था, जिसने दावा कर रखा था कि वर्गचेतना सम्पन्न स्त्री मज़दूरों के नब्बे फ़ीसदी का मुखपत्र 'प्रावदा' नहीं, बल्कि वह है, और यह भी कि 'प्रावदा' सिर्फ़ पिछड़े तबकों को आकर्षित करता है। उनका हमला इतना ज़ोरदार और सटीक था कि लेनिन ने उनके एक लेख का विशेष रूप से उल्लेख किया जो 'प्रावदा' के 12 मार्च के अंक में प्रकाशित हुआ था।

स्त्री आन्दोलन स्थिर गति से आगे बढ़ता रहा लेकिन लेनिन ने दिसम्बर 1913 में अपनी बहन अन्ना एलिज़ारोवा को एक विशेष पत्र भेजा। उस पत्र में उन्होंने संघर्ष के लिए जागरूक हो रही स्त्री मज़दूरों का हवाला देते हुए नयी शक्तियों को संगठित करने के लिए 'वूमन वर्कर' नाम से स्त्रियों के एक विशेष अख़बार के प्रकाशन की आवश्यकता बतायी। उन्होंने सुझाव दिया कि उसका संयोजन उन्हें ही करना चाहिए। लेनिन कामकाजी स्त्रियों के आन्दोलन के विकास पर विशेष रूप से नज़र रखते थे और जिसे वह विशेष महत्त्व देते थे।

अपनी पुस्तक 'द इपोक ऑफ़ ज़्वेस्दा' और 'प्रावदा' में कामरेड एलिज़ारोवा ने लिखा है कि उनके भाई ने उन्हें जो काम सौंपा था उन्होंने उसे किस तरह पूरा किया, इसका वर्णन करते हुए वह कहती हैं :

"दिसम्बर 1913 में मुझे व्लादीमिर इल्यीच का अंग्रेज़ी में लिखा पत्र मिलाद्व जिसमें उन्होंने लिखा था कि मुझे स्त्री मज़दूरों के एक अख़बार का आयोजन करना ही चाहिए, और मुझे सम्पादक मण्डल के लिए उपयुक्त लोगों का चुनाव करने और फ़िलहाल उसे गुप्त ही रखने का सुझाव दिया। आगे चलकर अख़बार के प्रकाशन के विचार को उन्हीं दिनों विदेश से लौटे रोज़्मिरोव और समोइलोवा ने सफलतापूर्वक आगे बढ़ाया।

"उन दिनों समोइलोवा 'प्रावदा' की सचिव थीं और उन पर काम का अत्यधिक बोझ था। उन्होंने इस बाबत मुझे बताया भी था। और मैंने सोचा कि शायद वह इस समय नया काम हाथ में लेने पर राजी नहीं होंगी लेकिन उन्होंने इसे बड़े ही उत्साह से किया। पाँचवें सम्पादक के रूप में हमने मेंजिंस्काया को आमन्त्रित किया, और तुरन्त अख़बार 'वूमन वर्कर' के पहले संस्करण के लिए लेख जुटाना शुरू कर दिया, जिसे अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस, 23 फ़रवरी तक आ जाना था। हमने इसे लोकप्रिय अख़बार बनाने का फ़ैसला किया। धनाभाव सबसे बड़ी अड़चन था। हमने 'प्रावदा' में एक चन्दा सूची जारी कर दी और धन जुटाना शुरू किया। मज़दूरों ने कोपेकों में, शब्दश: कोपेकों में, धन भेजना शुरू किया। लम्बे समय तक हम सम्पादकीय कार्यालय के लिए कमरे नहीं तलाश सके।"

अन्तत: सम्पादकीय मण्डल की पहली बैठक 6 फ़रवरी, 1914 को समोइलोवा के आवास पर हुई और कामयाब रही, सम्पादक मण्डल – रोज़्मिरोविच, ड्रेप्किना, समोइलोवा और निकोलेयेवा को गिरफ़्तार कर लिया गया और उसी दिन शाम को मेंजिंस्काया भी गिरफ़्तार कर ली गयीं। अकेली एलिज़ारोवा बची रह गयी थीं। फिर भी, काफ़ी मुश्किलों के बाद अख़बार का पहला अंक आ ही गया। उसने ज़बरदस्त प्रभाव छोड़ा और फ़ैक्टरियों में चर्चा का अकेला विषय यही था। सम्पादक मण्डल के पूरी तरह छिन्न-भिन्न हो जाने और फ़ैक्टरियों में बड़े पैमाने पर मज़दूरों की गिरफ़्तारी की वजह से अख़बार की स्थिति गम्भीर हो गयी। और सच पूछिये तो हालात बहुत ही कठिन थे – पैसे नहीं थे, काम करने वाले लोग नहीं थे और कोई सम्पर्क नहीं बचे रह गये थे। इस समय समोइलोवा जेल में थीं, जो यह काम करने के लिए अत्यन्त व्यग्र थीं।

लेकिन पुलिस के आड़े आने के बावजूद काम जारी रहा। कामरेड एलिज़ारोवा अपनी कहानी जारी रखते हुए लिखती हैं :

"जब मैं याम्सकाया स्ट्रीट पर पहुँची जहाँ 'वूमन वर्कर' का कार्यालय था, मुझे नये अख़बार के नाम पत्रों और बधाइयों का अम्बार लगा मिला, उनसे इतना उत्साह और साहस मिला और इतनी ख़ुशी हुई कि मेरा मूड फौरन बदल गया। रूस के दूर-दराज के हिस्सों से भेजे गये पत्रों में इतनी प्रसन्नता, नये लक्ष्य की सफलता में ऐसी अनन्य आस्था, त्याग की ऐसी तत्परता व्यक्त की गयी थी कि मैं फूली न समायी। सामूहिक रूप से भेजे गये चन्दे की रक़मों का अम्बार लग गया। ये रक़में एक-एक कोपेक जुटा कर जमा की गयी थीं। मैं महसूस कर सकती थी कि अपना मंच पाने की भावना आम जन मानस में गहरे तक उतर गयी थी। मैं उन लोगों के उत्साह और उनकी आकांक्षा को महसूस कर रही थी।

"उसके बाद स्त्री मज़दूर दफ़्तर में आने लगीं, हालाँकि शुरुआत में संकोच करती हुई ही, लेकिन बाद में वे 'प्रावदा' के दफ़्तर में भी आने लगीं। मुझे अपनी सबसे जीवन्त सहायक ऐवास फ़ैक्टरी की एमिल्या सोल्निन अच्छी तरह याद हैं। सबने अपने अख़बार को लेकर एक-सा उत्साह व्यक्त किया, एक-सी अनन्य आस्था व्यक्त की कि हर रुकावट के बावजूद, यह अपने पैरों पर खड़ा होगा, इसे अपने पैरों पर खड़ा होना ही है।

"स्त्री मज़दूरों ने फ़ैक्टरियों में नये सिरे से सम्पर्क बनाने शुरू किये। अख़बार के वितरण में विश्वास अनुभव करना शुरू किया। एक छापाख़ाना मिल गया और मैंने दूसरे अंक की तैयारियाँ शुरू कर दीं। आमुख कथा की जगह ऐवास फ़ैक्टरी की स्त्री कर्मचारियों के नाम यह कहते हुए एक अपील जारी की गयी कि "साथी स्त्री मज़दूरो, बड़े बलिदान और काफ़ी प्रयासों के बाद हमने अपना अख़बार, 'वूमन वर्कर' शुरू किया है। पहला अंक आ चुका है। स्त्री मज़दूरो, अख़बार की मदद करना हमारा कर्त्तव्य है। स्त्री मज़दूरों से बड़े पैमाने पर अख़बार का प्रसार करने का आह्वान करें। लगातार चन्दे जुटायें। धन जुटायें और सबसे बड़ी बात यह कि हमें पत्र लिखें।"

इस तरह समोइलोवा का सपना साकार हो गया।

अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस के प्रोत्साहकों और संयोजकों को पुलिस ने, ज़ार के एजेण्टों ने उनके पदों से हटा दिया। लेकिन जो ज़ोरदार लहर उमड़ पड़ी थी उसे रोका नहीं जा सकता था।

23 फ़रवरी, 1914 के 'प्रावदा' के अंक में समोइलोवा ने अपनी आसान, भावप्रवण और संक्षिप्त शैली में अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस का मुद्दा उठाया जिसने लाखों मेहनतकश स्त्रियों को जगाया था। उन्होंने लिखा :

"दिनों-दिन पूँजीवाद का बढ़ता प्रसार न सिर्फ़ पुरुषों बल्कि उनकी पत्नियों, बहनों और बेटियों को भी औद्योगिक जीवन के चक्रवात में खींच रहा है। उद्योगों की तमाम शाखाओं में धातु उद्योग समेत हज़ारों – दसियों हज़ार स्त्रियाँ काम करती हैं। पूँजी ने उन सब पर ठप्पा लगा दिया है और उन सबको श्रम बाज़ार में फेंक दिया है। वह युवाओं की, स्त्रियों की शारीरिक कमज़ोरी की और मातृत्व के उत्साह की उपेक्षा करती है। जब स्त्रियाँ फ़ैक्टरियों में जाती हैं और उन्हीं मशीनों पर काम करती हैं जिन पर मर्द करते हैं, तो वे एक नयी दुनिया का सन्धान करती हैं। उद्योग की प्रक्रिया में लोगों के नये सम्बन्धों का सन्धान करती हैं। वे मज़दूरों को अपने हालात सुधारने के लिए संघर्ष करते देखती हैं। और हर आने वाले दिन के साथ स्त्री मज़दूरों का इसका अधिकाधिक विश्वास होता गया कि काम की स्थितियों ने उन्हें फ़ैक्टरियों के पुरुष मज़दूरों के साथ जोड़ दिया है, कि उन सबके हित साझा हैं, और स्त्री मज़दूरों ने यह महसूस करना शुरू किया कि वे औद्योगिक परिवार का हिस्सा हैं, कि उनके हित समूचे मेहनतकश वर्ग के साथ जुड़े हैं।

"यह सच है कि ऐतिहासिक और पारिवारिक हालात वग़ैरह के चलते उनकी वर्ग चेतना का विकास बहुत धीमा है, फिर भी स्त्री मज़दूरों की चेतना की जागृति ऐसी सच्चाई है जिससे इनकार नहीं किया जा सकता। स्त्री मज़दूर बड़ी से बड़ी तादाद में हड़तालों, मज़दूर संगठनों के आन्दोलनों और बीमा अभियान में शामिल हो रही हैं। वे दूसरे देशों की स्त्री मज़दूरों के जीवन में रुचि लेती हैं और अन्तरराष्ट्रीय दृष्टिकोण रखती हैं। अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस अत्यन्त सांगठनिक महत्त्व का आयोजन है।"

उसके बाद उन्होंने मई 1 के आयोजन के साथ अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस के आयोजन की तुलना की। 1913 में रूस में पहले अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस का आयोजन एक उत्तेजक अभियान था जिसने जनता के सामने स्त्री मज़दूरों की दोहरी गुलामी के कारण और उनकी मुक्ति के तरीक़े पेश किये। लेकिन उसने सर्वहारा स्त्री मज़दूरों के लिए सांगठनिक आधार नहीं तैयार किया। इसलिए 1914 में आरएसडीएलपी की केन्द्रीय कमेटी ने व्यापक और गहन स्तर पर गतिविधियाँ चलाने का निश्चय किया। साल के प्रारम्भ में केन्द्रीय कमेटी के तत्वावधान में सर्वहारा ज़िलों में कई हॉलों में स्त्री दिवस सभाओं के आयोजन के लिए एक विशेष कमेटी का गठन किया गया। उन्हें सभाओं के आयोजन और 'वूमन वर्कर' के सम्पादकीय मण्डल में काम करने के लिए भी फ़ैक्टरियों और कारख़ानों से प्रतिनिधियों की सूची तैयार करने का काम सौंपा गया।

तेज़ी से काम चलता रहा। व्याख्यानों की व्यवस्था करने के लिए अनुमति ली गयी, हॉल तलाशे गये। मीटिंगों के चेयरमैन नियुक्त किये गये और फ़ैक्टरियों के जीवन के विस्तृत ब्योरों के साथ मुख्य व्याख्यानों के पूरक के तौर पर स्त्री मज़दूरों के बीच से वक्ता चुनी गयीं जो व्याख्यानों में व्यक्त किये गये मुख्य विचारों की व्याख्या और पुष्टि करतीं। व्याख्यानों के विषय पर न सिर्फ़ कमेटी में बल्कि फ़ैक्टरियों के विभिन्न बोल्शेविक सेलों में भी चर्चा की गयी जो कमेटी की बैठकों में प्राय: अपने प्रतिनिधि भेजते रहते थे। विशेष रूप से ऐवास फ़ैक्टरी से प्राय: प्रतिनिधि निकोलेयेवा, एमिल्या सोल्निन आते रहते थे। ऐवास फ़ैक्टरी उस समय काम करने की अगली क़तारों में थी।

लेकिन काम की व्यापकता और उसकी गहनता के अपने प्रतिकूल प्रभाव भी थे। प्रतिकूल इस मामले में कि उन्होंने 23 फ़रवरी के आने के काफ़ी पहले ही उसकी ओर पुलिस का ध्यान खींच लिया। एक दिन पुलिस ने दफ़्तर में मौजूद सारे लोगों को अचम्भे में डालते हुए वहाँ छापा मार दिया। मण्डल की बैठक पूरी तरह क़ानूनी थी क्योंकि अख़बार 'स्वीकृत' अख़बारों की सूची में था लेकिन यह स्वीकृति पुलिस के लिए महज़ काग़ज़ का एक टुकड़ा थी। सम्पादक मण्डल को

(पेज 11 पर जारी)

मई 1886 का वह रक्तरंजित दिन जब मज़दूरों के बहते ख़ून से जन्मा लाल झण्डा

मज़दूरों का त्योहार मई दिवस आठ घण्टे काम के दिन के लिए मज़दूरों के शानदार आन्दोलन से पैदा हुआ। उसके पहले मज़दूर चौदह से लेकर सोलह-सोलह घण्टे तक खटते थे। सारी दुनिया में अलग-अलग इस माँग को लेकर आन्दोलन होते रहे थे। अपने देश में भी 1862 में ही मज़दूरों ने इस माँग को लेकर कामबन्दी की थी। लेकिन पहली बार बड़े पैमाने पर 1886 में अमेरिका के विभिन्न मज़दूर संगठनों ने मिलकर आठ घण्टे काम के दिन की माँग पर एक विशाल आन्दोलन खड़ा करने का फ़ैसला किया।

एक मई 1886 को पूरे अमेरिका के लाखों मज़दूरों ने एक साथ हड़ताल शुरू की। इसमें 11,000 फ़ैक्टरियों के कम से कम तीन लाख अस्सी हज़ार मज़दूर शामिल थे। शिकागो महानगर के आसपास सारा रेल यातायात ठप्प हो गया और शिकागो के ज़्यादातर कारख़ाने और वर्कशाप बन्द हो गये। शहर के मुख्य मार्ग मिशिगन एवेन्यू पर अल्बर्ट पार्सन्स के नेतृत्व में मज़दूरों ने एक शानदार जुलूस निकला।

उधर मज़दूरों की बढ़ती ताक़त और उनके नेताओं के अडिग संकल्प से भयभीत उद्योगपति लगातार उन पर हमला करने की घात में थे। सारे के सारे अख़बार (जिनके मालिक पूँजीपति थे।) "लाल ख़तरे" के बारे में चिल्ल-पों मचा रहे थे। पूँजीपतियों ने आसपास से भी पुलिस के सिपाही और सुरक्षाकर्मियों को बुला रखा था। इसके अलावा कुख्यात पिंकरटन एजेंसी के गुण्डों को भी हथियारों से लैस करके मज़दूरों पर हमला करने के लिए तैयार रखा गया था। पूँजीपतियों ने इसे "आपात स्थिति" घोषित कर दिया था। शहर के तमाम धन्नासेठों और व्यापारियों की बैठक लगातार चल रही थी जिसमें इस "ख़तरनाक स्थिति" से निपटने पर विचार किया जा रहा था।

3 मई को शहर के हालात बहुत तनावपूर्ण हो गये जब मैकार्मिक हार्वेस्टिंग मशीन कम्पनी के मज़दूरों ने दो महीने से चल रहे लॉक आउट के विरोध में और आठ घण्टे काम के दिन के समर्थन में कार्रवाई शुरू कर दी। जब हड़ताली मज़दूरों ने पुलिस पहरे में हड़ताल तोड़ने के लिए लाये गये तीन सौ ग़द्दार मज़दूरों के ख़िलाफ़ मीटिंग शुरू की तो निहत्थे मज़दूरों पर गोलियाँ चलायी गयीं। चार मज़दूर मारे गये और बहुत से घायल हुए। अगले दिन भी मज़दूर ग्रुपों पर हमले जारी रहे। इस बर्बर पुलिस दमन के ख़िलाफ़ चार मई की शाम को शहर के मुख्य बाज़ार

हे मार्केट स्क्वायर में एक जनसभा रखी गयी। इसके लिए शहर के मेयर से इजाज़त भी ले ली गयी थी।

मीटिंग रात आठ बजे शुरू हुई। क़रीब तीन हज़ार लोगों के बीच पार्सन्स और स्पाइस ने मज़दूरों का आह्वान किया कि वे एकजुट और संगठित रहकर पुलिस दमन का मुक़ाबला करें। तीसरे वक्ता सैमुअल फ़ील्डेन बोलने के लिए जब खड़े हुए तो रात के दस बज रहे थे और ज़ोरों की बारिश शुरू हो गयी थी। इस समय तक स्पाइस और पार्सन्स अपनी पत्नी और दो बच्चों के साथ वहाँ से जा चुके थे। इस समय तक भीड़ बहुत कम हो चुकी थी – क़रीब दो सौ लोग ही रह गये थे। मीटिंग क़रीब-क़रीब ख़त्म हो चुकी थी कि 180 पुलिसवालों का एक जत्था धड़धड़ाते हुए हे मार्केट स्क्वायर आ पहुँचा। उसकी अगुवाई कैप्टन बॉनफ़ील्ड कर रहा था जिससे शिकागो के नागरिक उसके क्रूर और बेहूदे स्वभाव के कारण नफ़रत करते थे। मीटिंग में शामिल लोगों को चले जाने का हुक्म दिया गया। सैमुअल फ़ील्डेन पुलिसवालों को यह बताने की कोशिश ही कर रहे थे कि यह शान्तिपूर्ण सभा है, कि इसी बीच किसी ने मानो इशारा पाकर एक बम फेंक दिया। आज तक बम फेंकने वाले का पता नहीं चल पाया है। शिकागो में यह माना जाता है कि बम फेंकने वाला पुलिस का भाड़े का टट्टू था। स्पष्ट था कि बम का निशाना मज़दूर थे लेकिन पुलिस चारों और फैल गयी थी और नतीजतन बम का प्रहार पुलिसवालों पर हुआ। एक मारा गया और पाँच घायल हुए। पगलाये पुलिसवालों ने चौक को चारों ओर से घेरकर भीड़ पर अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलानी शुरू कर दीं। जिसने भी भागने की कोशिश की उस पर गोलियाँ और लाठियाँ बरसायी गयीं। छः मज़दूर मारे गये और 200 से ज़्यादा जख्मी हुए। मज़दूरों ने अपने ख़ून से अपने कपड़े रँगकर उन्हें ही झण्डा बना लिया। तभी से मज़दूरों के झण्डे का रंग लाल हो गया।

इस घटना के बाद पूरे शिकागो में पुलिस ने मज़दूर बस्तियों, मज़दूर संगठनों के दफ़्तरों, छापाख़ानों आदि में ज़बरदस्त छापे डाले। प्रमाण जुटाने के लिए हर चीज़ उलट-पुलट डाली गयी। सैकड़ों लोगों को मामूली शक पर पीटा गया और बुरी तरह टॉर्चर किया गया। हज़ारों गिरफ़्तार किये गये।

आठ मज़दूर नेताओं – **अल्बर्ट पार्सन्स, आगस्टस स्पाइस, जार्ज एंजेल, एडाल्फ़ फ़िशर, सैमुअल फ़ील्डेन, माइकेल श्वाब, लुइस लिंग्ग** और **आस्कर नीबे** पर मुक़दमा चलाकर उन्हें हत्या का मुजरिम क़रार दिया गया। इनमें से सिर्फ़ एक, सैमुअल फ़ील्डेन बम फटने के समय घटना स्थल पर मौजूद था। जब मुक़दमा शुरू हुआ तो सात लोग ही कठघरे में थे। डेढ़ महीने तक अल्बर्ट पार्सन्स पुलिस से बचता रहा। वह पुलिस की पकड़ में आने से बच सकता था लेकिन उसकी आत्मा ने यह गवारा नहीं किया कि वह आज़ाद रहे जबकि उसके बेक़सूर साथी फ़र्जी मुक़दमें में फँसाये जा रहे हों। पार्सन्स ख़ुद अदालत में आया और जज से कहा, "मैं अपने बेक़सूर कॉमरेडों के साथ कठघरे में खड़ा होने आया हूँ।"

पूँजीवादी न्याय के लम्बे नाटक के बाद 20 अगस्त 1887 को शिकागो की अदालत ने अपना फ़ैसला दिया। सात लोगों को सज़ाए-मौत और एक (नीबे) को पनद्रह साल क़ैद बामशक्कत की सज़ा दी गयी। **स्पाइस** ने अदालत में चिल्लाकर कहा था कि **"अगर तुम सोचते हो कि हमें फाँसी पर लटकाकर तुम मज़दूर आन्दोलन को... ग़रीबी और बदहाली में कमरतोड़ मेहनत करनेवाले लाखों लोगों के आन्दोलन को कुचल डालोगे, अगर यही तुम्हारी राय है – तो ख़ुशी से हमें फाँसी दे दो। लेकिन याद रखो ... आज तुम एक चिंगारी को कुचल रहे हो लेकिन यहाँ-वहाँ, तुम्हारे पीछे, तुम्हारे सामने, हर ओर लपटें भड़क उठेंगी। यह जंगल की आग है। तुम इसे कभी भी बुझा नहीं पाओगे।"**

सारे अमेरिका और तमाम दूसरे देशों में इस क्रूर फ़ैसले के ख़िलाफ़ भड़क उठे जनता के ग़ुस्से के दबाव में अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट ने पहले तो अपील मानने से इन्कार कर दिया लेकिन बाद में इलिनाय प्रान्त के गर्वनर ने फ़ील्डेन और श्वाब की सज़ा को आजीवन कारावास में बदल दिया। 10 नवम्बर 1887 को सबसे कम उम्र के नेता लुइस लिंग्ग ने कालकोठरी में आत्महत्या कर ली।

काला शुक्रवार

अगला दिन (11 नवम्बर 1887) मज़दूर वर्ग के इतिहास में काला शुक्रवार था। **पार्सन्स, स्पाइस, एंजेल** और **फ़िशर** को शिकागो की कुक काउण्टी जेल में फाँसी दे दी गयी। अफ़सरों ने मज़दूर नेताओं की मौत का तमाशा देखने के लिए शिकागो के दो सौ धनवान शहरियों को बुला रखा था। लेकिन मज़दूरों को डर से काँपते-घिघियाते देखने की उनकी तमन्ना धरी की धरी रह गयी। वहाँ मौजूद एक पत्रकार ने बाद में लिखा : "चारों मज़दूर नेता क्रान्तिकारी गीत गाते हुए फाँसी के तख्ते तक पहुँचे और शान के साथ अपनी-अपनी जगह पर खड़े हो हुए। फाँसी के फन्दे उनके गलों में डाल दिये गये। स्पाइस का फन्दा ज़्यादा सख्त था, फ़िशर ने जब उसे ठीक किया तो स्पाइस ने मुस्कुराकर धन्यवाद कहा। फिर स्पाइस ने चीख़कर कहा, **'एक समय आयेगा जब हमारी ख़ामोशी उन आवाज़ों से ज़्यादा ताक़तवर होगी जिन्हें तुम आज दबा डाल रहे हो।...'** फिर पार्सन्स ने बोलना शुरू किया, **'मेरी बात सुनो... अमेरिका के लोगो! मेरी बात सुनो... जनता की आवाज़ को दबाया नहीं जा सकेगा...'** लेकिन इसी समय तख्ता खींच लिया गया।"

13 नवम्बर को चारों मज़दूर नेताओं की शवयात्रा शिकागो के मज़दूरों की एक विशाल रैली में बदल गयी। पाँच लाख से भी ज़्यादा लोग इन नायकों को आख़िरी सलाम देने के लिए सड़कों पर उमड़ पड़े।

तब से गुज़रे 123 सालों में अनगिन संघर्षों में बहा करोड़ों मज़दूरों का ख़ून इतनी आसानी से धरती में जज़्ब नहीं होगा। फाँसी के तख्ते से गूँजती स्पाइस की पुकार पूँजीपतियों के दिलों में ख़ौफ़ पैदा करती रहेगी। अनगिन मज़दूरों के ख़ून की आभा से चमकता लाल झण्डा आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता रहेगा।

नताशा – एक महिला बोल्शेविक संगठनकर्ता

(पेज 10 से आगे)

आधिकारिक आदेश दिखाया गया जिस पर ये अपशगुनी शब्द लिखे थे : "जगह की तलाशी लो और तलाशी में कुछ मिले या न मिले, वहाँ मौजूद सभी प्रतिनिधियों को गिरफ़्तार कर लो।" नयी शामिल हुई स्त्री मज़दूरों समेत कुल मिलाकर तीस लोग गिरफ़्तार किये गये।

'द कम्युनिस्ट वूमन' ने 1923 में समोइलोवा का एक लेख छापा जिसमें उन्होंने इसका जीवन्त ब्योरा दिया था कि कैसे गिरफ़्तार लोगों ने जेल में अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस मनाया। उसका कोलाहल सुनकर समूचा जेल प्रशासन भयभीत हो गया और वह कोलाहल सड़कों पर भी सुना गया।

लेकिन अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस केवल जेल में ही नहीं मनाया गया। यह सच है कि सेण्ट पीटर्सबर्ग में हर तरह की सभाओं पर रोक लगी हुई थी। सिर्फ़ बोल्शेया ग्रेबेत्स्काया स्ट्रीट पर स्थित फ़्योदोरोवा हॉल में एक आयोजन हुआ। लेकिन बड़ी संख्या में स्त्री-पुरुष उन हॉलों पर भी पहुँचे जहाँ सभाएँ होनी थीं, इससे सड़कों पर भारी भीड़ जमा हो गयी। फ़्योदोरोवा हॉल पर इतने सारे लोग आये कि उनमें से आधे हॉल में पहुँच ही नहीं सके। हॉल में पाँच सौ लोग जमा थे। वक्ताओं में मेंजिंस्काया और पोवलोवा नाम की एक स्त्री मज़दूर शामिल थी। दूसरी सभाएँ इसलिए नहीं हो सकीं कि वक्ताओं को गिरफ़्तार कर लिया गया था। पुलिस ने फ़्योदोरोवा हॉल की सभा में भी खलल डाला – पुरुषों की क्रुद्ध भीड़ सड़क पर आ गयी और मार्सेलेज गाने लगी। पुलिस ने भीड़ को तितर-बितर कर दिया। बहरहाल पुरुषों का विशाल मोर्चा विभिन्न सड़कों पर से होकर मार्सेलेज और दूसरे क्रान्तिकारी गीत गाते हुए नेव्स्की प्रास्पेक्ट तक गया। दूसरे अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस समारोह के आयोजन में स्त्रियों में बेहतर वर्ग चेतना और ज़्यादा एकजुटता देखने में आयी।

अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस सिर्फ़ पीटर्सबर्ग में ही नहीं बल्कि मास्को और दूसरे कई शहरों में भी मनाया गया। सारी रूसी मज़दूर स्त्रियाँ इसके बारे में जान गयी थीं। दमन के बावजूद 'वूमन वर्कर' बहुत तेज़ी से बिका, बार-बार एक हाथ से दूसरे हाथ में, एक पाठक से दूसरे पाठक तक पहुँचा और संघर्ष के लिए लगातार नयी ताक़तों को उत्तेजित करता रहा।

इस अख़बार ने रबड़ उद्योग में घटी त्रासद घटनाओं के मामले में बड़ी भूमिका निभायी, जिसमें उत्पादकों के लालच और ज़ारवादी निरीक्षकों की लापरवाही के चलते बड़ी तादाद में स्त्री-पुरुष विषाक्तता के शिकार हुए थे। एलिज़ारोवा ने "वे नाराज़ हैं" शीर्षक से एक बड़ा ही विचारोत्तेजक लेख लिखा जिसके लिए 'वूमन वर्कर' का तीसरा अंक जब्त कर लिया गया।

'वूमन वर्कर' बोल्शेविक अख़बार बन गया जिसकी स्थापना स्त्री मज़दूरों के कोपेकों की बदौलत हुई थी और उन्हीं का समर्थन उसे चला रहा था।

अनुवाद: विजयप्रकाश सिंह

(अगले अंक में जारी)

पंजीयन संख्या 71980/99 | डाक पंजीयन संख्या SSP/LW-NP/399/2009-11 | प्रेषक डाकघर - महानगर | प्रेषण तिथि - माह की 13, 14, 15 तारीख

पाँच क्रान्तिकारी जनसंगठनों का साझा चुनावी भण्डाफोड़ अभियान

चुनावी राजनीति के मायाजाल से बाहर आओ! नये मज़दूर इन्क़लाब की अलख जगाओ!!

देशभर में लोकसभा चुनाव के लिए जारी धमाचौकड़ी के बीच बिगुल मज़दूर दस्ता, देहाती मज़दूर यूनियन, दिशा छात्र संगठन, नौजवान भारत सभा, और स्त्री मुक्ति लीग ने दिल्ली, उत्तर प्रदेश और पंजाब के अलग-अलग इलाक़ों में चुनावी भण्डाफोड़ अभियान चलाकर लोगों को यह बताया कि वर्तमान संसदीय ढाँचे के भीतर देश की समस्याओं का हल तलाशना एक मृगमरीचिका है। ऊपर से नीचे तक सड़ चुकी इस आर्थिक-राजनीतिक-सामाजिक व्यवस्था को ध्वस्त कर बराबरी और न्याय पर टिका नया हिन्दुस्तान बनाने के लिए आम अवाम को संगठित करके एक नया इन्क़लाब लाना होगा।

दिल्ली, लखनऊ, गोरखपुर, लुधियाना, चण्डीगढ़ आदि शहरों में इन संगठनों के कार्यकर्ताओं ने चुनावी राजनीति का भण्डाफोड़ करते हुए बड़े पैमाने पर पर्चे बाँटे, नुक्कड़ सभाएँ कीं, घर-घर सम्पर्क किया, ट्रेनों-बसों में और बस-रेलवे स्टेशनों पर प्रचार अभियान चलाये और दीवारों पर पोस्टर लगाये। दिल्ली, लखनऊ और गोरखपुर में चुनावी राजनीति की असलियत उजागर करने वाली एक आकर्षक पोस्टर प्रदर्शनी भी जगह-जगह लगायी गयी जिसने बड़े पैमाने पर लोगों का ध्यान खींचा। दिल्ली में रोहिणी इलाक़े में जागरूक नागरिक मंच ने अपनी दीवाल पत्रिका 'पहल' के ज़रिये भी चुनावी राजनीति के भ्रमजाल पर करारी चोट की।

राजधानी दिल्ली में दिल्ली विश्वविद्यालय, करावलनगर, शहीद भगतसिंह कालोनी, प्रकाश विहार, अंकुर एन्क्लेव, शिव विहार, कमल विहार, मुस्तफ़ाबाद, नरेला, राजा विहार, सूरज पार्क, बादली आदि इलाक़ों में चलाये गये भण्डाफोड़ अभियान के दौरान कार्यकर्ताओं ने कहा कि चुनाव में बड़े-बड़े दावे किये जा रहे हैं। इस बार मीडिया में धुआँधार प्रचार अभियान चलाकर लोगों को वोट देने के लिए प्रेरित किया जा रहा है। कोई इसे परिवर्तन की अग्नि बता रहा है तो कोई कह रहा है कि महज़ एक वोट से हम देश की तक़दीर बदल सकते हैं। लेकिन असलियत यह है कि हमसे कहा जा रहा है कि हम चुनें लम्पटों, लुटेरों, भ्रष्टाचारियों, व्यभिचारियों के इस या उस गिरोह को, थैलीशाहों के इस या उस टुकड़खोर को, जहरीले साँपों, भेड़ियों और लकड़बग्घों की इस या उस नस्ल को। किसी भी पार्टी के लिए आम जनता की तबाही-बर्बादी कोई मुद्दा नहीं है। बढ़ती महँगाई, बेरोज़गारी, छँटनी, पूँजीपतियों की लूट-खसोट, पुलिसिया अत्याचार, भ्रष्टाचार किसी पार्टी के लिए कोई मुद्दा नहीं है। ग़रीबों के लिए स्वास्थ्य, सबके लिए बराबर और सस्ती शिक्षा, रोज़गार, बिजली, पानी, घर जैसी माँगें इस चुनाव में कोई मुद्दा नहीं है। हमेशा की तरह साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की नफ़रत भरी राजनीति ज़ोर-शोर से जारी है। चुनाव जीतने के लिए जनता का समर्थन नहीं बल्कि जातीय समीकरणों के जोड़-तोड़ भिड़ाये जा रहे हैं।

नुक्कड़ सभाओं में वक्ताओं ने कहा कि असलियत तो पहले भी यही थी मगर इस पर भ्रम के परदे पड़े हुए थे। लेकिन ख़ास तौर पर पिछले 25-30 वर्षों में यह सच्चाई ज़्यादा से ज़्यादा नंगे रूप में उजागर होती गयी है कि यह जनतन्त्र नहीं बल्कि बेहद निरंकुश क़िस्म का धनतन्त्र है। हमें बस यह चुनने की आज़ादी है कि अगले पाँच वर्षों तक कौन हमारा ख़ून निचोड़े, किसके हाथों से हम दरबदर किये जायें!

लखनऊ में जीपीओ पार्क, हाई कोर्ट, मुंशी पुलिया, पॉलिटेक्निक चौराहा, चौक, अमीनाबाद आदि इलाक़ों में भण्डाफोड़ पोस्टर प्रदर्शनी लगायी गयी और पर्चे बाँटे गये। प्रदर्शनी स्थल पर जुटी भीड़ को सम्बोधित करते हुए कार्यकर्ताओं ने कहा कि 1952 में चुनावी ख़र्च महज़ डेढ़ करोड़ रुपये का था जो अब बढ़ते-बढ़ते 13,000 करोड़ तक पहुँच चुका है – और यह तो महज़ घोषित ख़र्च है। पार्टियों और उम्मीदवारों द्वारा किया जाने वाला असली ख़र्च तो इससे कई-कई गुना ज़्यादा है। चुनाव ख़त्म होते ही यह सारा ख़र्च आम ग़रीब जनता से ही वसूला जायेगा।

गोरखपुर में दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ताओं ने बिछिया, रामलीला बाज़ार, सब्ज़ी मण्डी, शाहपुर, धरमपुर, लेबर चौक, इन्दिरा तिराहा आदि पर नुक्कड़ सभाएँ कीं, पोस्टर प्रदर्शनी लगायी और बड़े पैमाने पर पर्चे बाँटे। सभाओं में कहा गया कि भगवाधारी भाजपा हो या तिरंगा उड़ाने वाली कांग्रेस, हरे-नीले-पीले झण्डे वाली तमाम क्षेत्रीय पार्टियाँ हों या लाल झण्डे को बेचकर संसद में सीट ख़रीदने वाले नक़ली वामपन्थी – लुटेरी आर्थिक नीतियों के सवाल पर सबमें एकता है। यह बात दिनोदिन साफ़ होती जा रही है कि सरकार चाहे इसकी हो या उसकी – वह शासक वर्गों की मैनेजिंग कमेटी ही होती है। यह जनतन्त्र पूँजीपतियों का अधिनायकतन्त्र ही है। लोगों को अपने तथाकथित "प्रतिनिधियों" का चुनाव बस इसीलिए करना है ताकि वे संसद के सुअरबाड़े में बैठकर जनता को दबाने के नये-नये क़ानून बनायें, निरर्थक बहसें और जूतम-पैजार करें और देशी-विदेशी धनपतियों की सेवा करते हुए अपने पड़पोतों और पड़पड़पोतों तक के लिए कमाकर धर दें।

पंजाब में लुधियाना, चण्डीगढ़ सहित अनेक स्थानों पर चलाये गये भण्डाफोड़ अभियान में कार्यकर्ताओं ने अपने भाषणों और पर्चों में कहा कि इस बार सभी चुनावी धन्धेबाज़ों का मुख्य मुद्दा है कि प्रधानमन्त्री कौन बने। लेकिन किसी की नीतियों में कोई बुनियादी फ़र्क़ नहीं है। कांग्रेस की अगुवाई वाला यू.पी.ए. गठबन्धन हो, भाजपा की अगुवाई वाला एन.डी.ए. गठबन्धन हो, तीसरा मोर्चा हो या अन्य कोई भी चौथा-पाँचवाँ गठबन्धन या मोर्चा, सभी की नीतियाँ देसी-विदेशी पूँजी के पक्ष में और मेहनतकश जनता के विपक्ष में चलायी जा रही निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों से ज़रा भी इधर-उधर नहीं जाती हैं। आज सैकड़ों करोड़पति गुण्डे-अपराधी लोकसभा के चुनाव लड़ रहे हैं। जिस देश की 77 प्रतिशत जनता रोज़ाना महज़ 20 रुपये पर गुज़ारा करती हो वहाँ की जनता को कहा जा रहा है कि वे अपने भाग्य का फ़ैसला करने के लिए करोड़पतियों को चुनें। चुनाव लड़ रहे नेताओं में से 15 प्रतिशत ऐसे हैं जो इस देश के बुर्जुआ क़ानून के अनुसार भी अपराधी हैं। कहने को तो साधारण ग़रीब आदमी भी चुनाव में हिस्सा ले सकता है, लेकिन हम जानते ही हैं कि चुनाव धन और गुण्डागर्दी के सहारे ही जीते जाते हैं।

उन्होंने कहा कि आज जनता विकल्पहीनता की स्थिति में है और क्रान्ति की शक्तियाँ कमजोर हैं। पर रास्ता एक ही है। इलेक्शन नहीं, इन्क़लाब का रास्ता! मेहनतकशों को चुनावी मदारियों से कोई भी आस छोड़कर अपने क्रान्तिकारी संगठन बनाने के लिए आगे आना होगा। इस देश की सूरत बदलने वाले सच्चे क्रान्तिकारी विकल्प का निर्माण चुनावी नौटंकी से नहीं बल्कि जनता के क्रान्तिकारी संघर्षों से ही होगा। जब जनता ख़ुद संगठित हो जायेगी तब वह वास्तव में चुनाव कर सकेगी – वह चुनाव होगा यथास्थिति और क्रान्ति के बीच, लोकतन्त्र के स्वांग और वास्तविक लोकसत्ता के बीच! हमें इसकी तैयारी आज से ही शुरू कर देनी चाहिए।

सभी जगह अभियान टोलियों ने मेहनतकशों, इंसाफ़पसन्द नागरिकों और नौजवानों का आह्वान किया कि वे नयी सदी की नयी क्रान्ति की क़तारों को संगठित करने के लिए आगे आयें। शहीदेआज़म भगतसिंह के सन्देश को सुनें और क्रान्ति का पैग़ाम हर दिल तक ले जाने में जुट जायें। चुनावी मदारियों के मायाजाल से बाहर आयें और जनता की सच्ची लोकसत्ता क़ायम करने के लिए लम्बी लड़ाई की राह पर डट जायें।

– बिगुल संवाददाता

देहाती मज़दूर यूनियन द्वारा 8 दिन की क्रमिक भूख हड़ताल सफल

बिगुल संवाददाता

मधुबन, मऊ। प्रशासन की उपेक्षा और संवेदनहीनता से तंग आकर मधुबन तहसील के अन्तर्गत फ़तेहपुर मण्डाव ब्लॉक के कई गाँवों के नरेगा मज़दूर अपनी 7 माँगों और मर्यादपुर ग्राम सभा की 5 माँगों को लेकर 22 अप्रैल से क्रमिक अनशन पर बैठे थे। इन गाँवों में मर्यादपुर, डुमरी, लखनौर, भिडवरा, जवाहिरपुर, गोबबाडी, रामपुर, अलीपुर-शेखपुर, ताजपुर, बेमडाड, गुरम्हा, छतहरा, लघुआई, लऊआसात शामिल थे। अनशन पर जाने से पूर्व उन्होंने ज़िला और तहसील स्तर पर हर जगह बार-बार पत्र लिखकर, ज्ञापन देकर अपनी आवाज़ पहुँचाने की कोशिश की, लेकिन मज़दूरों की आवाज़ कहीं नहीं सुनी गयी।

जगह-जगह पोस्टर लगाकर और सभाओं द्वारा इस अनशन की सूचना लोगों तक पहुँचायी गयी। देहाती मज़दूर यूनियन की टोली ने घर-घर जाकर लोगों से सहयोग और समर्थन माँगा। सहयोग और समर्थन के अलावा कई घरों से कार्यकर्ताओं को आटा, चावल, ईन्धन, आलू आदि सामान भी मिला।

22 अप्रैल को मर्यादपुर बाज़ार में मज़दूर अनशन पर बैठ गये। क़रीब-क़रीब रोज़ाना ही बहुतेरे मज़दूर वहाँ आते और स्वयं अनशन पर बैठने के लिए आग्रह करते। यह स्थिति तो तब थी जब ग्रामीण मज़दूरों की भारी आबादी फ़सल की कटाई में व्यस्त थी। स्वेच्छा से अनशन पर बैठने वालों की संख्या जल्दी ही 30 से ऊपर पहुँच गयी।

इधर प्रशासन, सबकुछ जानते-समझते हुए भी अन्धा-बहरा बना रहा। हतोत्साहित करने के लिए प्रधान और उसके चाटुकार मज़दूरों और ग्रामीणों को आचार संहिता का उल्लंघन करने और लाठीचार्ज होने की बात कह कर डराते रहे। इस सबके बावजूद अनशन जारी रहा और शामिल होने वाले मज़दूरों की संख्या बढ़ती चली गयी।

जनता की पहलक़दमी और एकजुटता ने अन्ततः प्रशासन को झुकने पर मजबूर कर दिया। 29 अप्रैल को बी.डी.ओ. अपने सहायक अधिकारियों के साथ अनशन स्थल पर पहुँचे। पहले तो उन्होंने माँगों को लेकर टालमटोल करनी चाही, लेकिन लोगों के गुस्से को देखते हुए नरेगा मज़दूरों की कुछ अहम माँगें माननी पड़ीं :

1. मज़दूरों का जॉब कार्ड बनवाने के लिए ब्लॉक स्तर पर विशेष कैम्प लगेगा
2. बैंक खाता खुलवाने के लिए विशेष कैम्प लगेगा
3. बकाया मज़दूरी का भुगतान तुरन्त होगा। रोज़गार अथवा बेरोज़गारी भत्ता मिलेगा
4. जिन मज़दूरों के जॉब कार्ड प्रधान के पास हैं, वे मज़दूरों को दिलवाये जायेंगे
5. सामाजिक संपरीक्षा रिपोर्ट 'चिन्दियाँ' में उजागर घोटाले की जाँच होगी

संघर्ष की इस छोटी-सी अवधि में ही मज़दूर संगठन का महत्त्व समझने लगे हैं। दूर-दराज के गाँवों से नरेगा के मज़दूर सम्पर्क कर रहे हैं और अपने यहाँ भी संगठन की शाखाएँ खोलने की माँग कर रहे हैं। क्रमिक अनशन में हुई जीत भले ही कितनी ही छोटी क्यों न हो, आज वह इस क्षेत्र के मज़दूरों के लिए महत्त्वपूर्ण बन गयी है।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग: कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फ़ाउण्डेशन, लखनऊ।
सम्पादक : **डा. दूधनाथ, सुखविन्दर** • सम्पादकीय पता : **69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226 020** • सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ